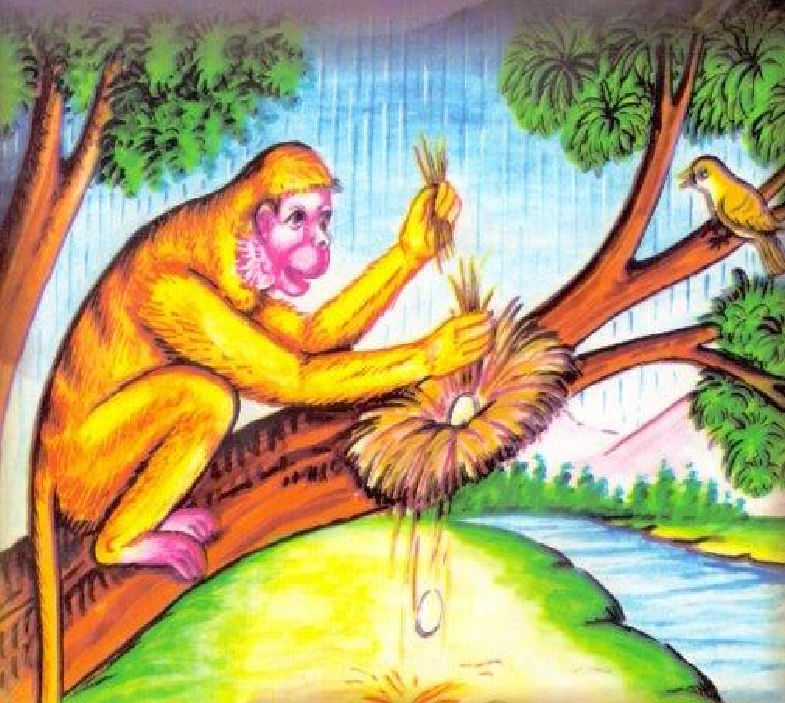
बाल निर्माण की कहानियाँ

४



बाल निर्माण की कहानियाँ

(भाग-४)



लेखिका

डॉ० आशा 'सरसिज'



प्रकाशक

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३

दूरभाष : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो० ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स : (०५६५) २५३०२००



पुनरावृत्ति सन्-2014 मूल्य : 11) रुपए

विषय-सूची

सोनी की धूर्तता

अमरकंटक वन में पीपल का एक बड़ा पुराना पेड़ था। उस पर कनु नाम का एक बंदर रहा करता था। कनु बड़े ही अच्छे स्वभाव का था। सबसे मीठी वाणी बोलता था। किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करता था। दूसरों की सहायता किया करता था, इसलिए उस पेड़ पर रहने वाले सभी प्राणी कनु को बहुत प्यार करते थे।

जंगल में कनु के बहुत से दोस्त बन गए। एक बार कनु की मित्रता एक खरगोश से हो गई। हुआ यह कि भानु नाम का एक खरगोश भेड़िये के चंगुल में फँस गया। वह सहायता के लिए पुकार रहा था। तभी कनु वहाँ आ पहुँचा। अपनी बुद्धिमानी से कनु ने भानु को छुड़ा लिया। तभी से भानु कनु बंदर का पक्का दोस्त बन गया।

भानु खरगोश को कनु बंदर के बिना चैन नहीं पड़ता था। वह सुबह-सुबह पीपल के पेड़ के नीचे आ जाता और कनु को पुकारने लगता। फिर दोनों घूमने निकल पड़ते। सुबह-सुबह ठंढी हवा में वे टहलते और अपना स्वास्थ्य बनाते। रास्ते में कनु कभी किसी बूढ़े जानवर की सहायता करता तो कभी किसी असहाय पक्षी की सेवा करता। भास्कर नाम का एक बूढ़ा हाथी जंगल में रहता था। वह बड़ा ही दुर्बल था। अपना कुछ भी काम नहीं कर पाता था। कनु प्रतिदिन उसके लिए खाना जुटाकर रख आता था। इस प्रकार कनु बंदर का सुबह का सारा समय दीन-दुखी जानवरों की सेवा करने में ही व्यतीत होता था।

इसके बाद दोनों मित्रों को भूख लग आती थी। कनु कभी किसी जामुन के पेड़ पर चढ़ जाता तो कभी अमरूद के। वह खूब

सारे फल तोड़ता। कनु बंदर और भानु खरगोश दोनों मिलकर उन्हें खाते। फिर टहलते हुए वापस घर आते।

पीपल के उसी पेड़ पर एक सोनी नाम की गिलहरी भी रहा करती थी। वह कनु और भानु की मित्रता देखकर बड़ी चिढ़ती थी। खुद तो उसकी किसी से बनती नहीं थी। उसका कोई भी मित्र नहीं था। इसका कारण सोनी का स्वभाव था। वह जरा सी बात में गुस्सा हो जाती थी। चाहे जब चाहे किसी को उलटी-सीधी-कड़वी बातें कहने लगती थी। इसीलिए सभी उससे बचते थे।

सोनी गिलहरी फूट डलवाने में बड़ी चतुर थी। वह इस प्रकार बातें करती थी कि सुनने वाला पूरी तरह उसकी बातों में आ जाता था। सोनी ने कनु बंदर को भी खरगोश के विरुद्ध बहुत भड़काया। वह बोली—"कनु तुम्हें पता नहीं है कि वह भानु खरगोश कितना चालाक है। यह तुम्हारी पीठ पीछे बुराई करता है।"

कनु बोला—"दीदी! मुझे भानु पर विश्वास है। उसे मेरा जो भी व्यवहार बुरा लगेगा, उसके बारे में मुझसे कहेगा। वह कभी मेरे पीछे मेरी बुराई नहीं करेगा।"

इसी प्रकार प्रतिदिन ही सोनी कनु बंदर को भानु खरगोश के विरुद्ध भड़काती, पर कनु समझदार था। उसकी बात एक कान से सुनता और दूसरे से निकाल देता।

जब कनु पर कोई वश न चला तो सोनी गिलहरी ने चुपके-चुपके भानु खरगोश के कान भरने शुरू कर दिए। वह कहने लगी—"देख लेना कनु के चक्कर में तुम किसी दिन अपने प्राण गँवा बैठोगे। कनु की दोस्ती नंदू भेड़िये से है। वह किसी दिन तुम्हें उसके हवाले जरूर कर देगा। इसलिए वह तुम्हें पाल रहा है।"

सोनी की बातें धीरे-धीरे भानु के मन पर असर करती गईं। उसके मन में कनु बंदर के लिए मित्रता जैसा कोई भाव न रहा। दोनों साथ घूमने जाते, पर भानु खरगोश पहले की भाँति प्रसन्न मन से बातें न करता।

कनु समझ गया कि जरूर कुछ दाल में काला है। हो न हो सोनी गिलहरी ने ही भानु के कान भरे हैं। वह भानु से बोला—"मित्र! मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे मन में मेरे लिए पहले जैसा स्नेह नहीं है। मन में स्नेह न रहने पर कैसी मित्रता? फिर अच्छा हो कि हम अपनी मित्रता ही समाप्त कर दें।"

सह सुनकर भानु सकपका गया। फिर गुस्से में भरकर कहने लगा—"मित्र को कभी अपने मित्र का बुरा नहीं सोचना चाहिए।"

मैंने तेरे लिए क्या बुरी बात सोची है? कनु ने पूछा—"तुम मुझे नंदू भेड़िये को खिलाने की बात सोचते हो।" भानु ने कहा।

कनु पूछने लगा—"यह तुमसे किसने कहा है? मैं तो मित्र के साथ धोखा करने की बात सोच भी नहीं सकता।"

"सोनी गिलहरी ने मुझे यह बात बताई।" भानु बोला।

कनु कहने लगा—"दोस्त! तुम्हें अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिए। सोच-विचारकर कदम उठाना चाहिए। कुछ प्राणी ऐसे ही होते हैं जो दूसरों को सुखी नहीं देख सकते। वह बिना किसी कारण के उनकी बुराई करते हैं, उनमें फूट डलवाते हैं, उनमें लड़ाई कराते हैं। ऐसे नीचता के कार्यों में उन्हें सुख मिलता है। उनकी बातों में आकर हमारा कुछ भी भला नहीं होगा।"

"तो क्या सोनी गिलहरी झूठ कर रही थी?" भानु पूछने लगा।

कनु ने उसे बताया कि सोनी गिलहरी ने उसे भी भानु के विरुद्ध बहुत भड़काया था, पर उसने सोनी की बातों को कोई महत्त्व नहीं दिया। वह सोनी के स्वभाव से परिचित था, सोनी का काम ही यही है।

भानु की समझ में भी सोनी की चालाकी आ रही थी। वह कहने लगा—"तुम ठीक ही कहते हो। दूसरे की बातों में आकर मित्र पर अविश्वास करना ठीक नहीं। एक ही बार सोच-समझकर मित्र बनाना चाहिए, फिर मित्रता का हमेशा निर्वाह करना चाहिए।

मित्रता की आड़ में धोखे की बात तो नीच और दुष्ट ही सोचा करते हैं। तुम्हें मुझे भेड़िये को ही खिलाना होता तो फिर पहले ही क्यों बचाता ?''

फिर वह कनु के पैरों पर गिरते हुए बोला—''मैंने तुम पर अविश्वास किया है। मुझे माफ कर दो।''

भानु को उठाकर उसकी पीठ सहलाते हुए कनु बोला—''मैंने माफ किया, पर आगे ध्यान रखना। कभी दूसरों की बातों में न आना। तुम्हें मुझसे जो शिकायत हो सीधे-सीधे मुझसे ही कहना। जो दूसरों की बातों में आकर बहक जाता है, मित्र पर अविश्वास करने लगता है, वह जीवन में सच्चा मित्र कभी नहीं पा सकता।''

''अब मैं कभी भी दूसरों के बहकावे में नहीं आऊँगा। अच्छा हुआ जो बात साफ हो गई अन्यथा तुम्हारे जैसे सच्चे मित्र से मैं वंचित हो जाता।'' भानु ने कहा।

चलो इस खुशी में आज मैं तुम्हें बढ़िया सी दावत खिलाता हूँ। कहकर कनु जामुन के पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ से वह रसभरी पकी हुई मीठी-मीठी जामुन गिराता रहा। पेड़ के नीचे बैठे भानु ने उन्हें खूब छककर खाया।

फिर दोनों मित्र खुशी-खुशी अपने-अपने घर चले। सोनी गिलहरी ने देखा कि उसकी दाल नहीं गली तो वह मन मसोसकर रह गई।



मित्र का कर्त्तव्य

राधू खरगोश को अन्य खरगोशों के साथ अमिताभ की माँ ने पालतू बना लिया था। राधू और अन्य तीन खरगोश पिंजरे में रहते-रहते तंग आ गए। सभी को जंगल से पकड़कर लाया गया था। वे यही सोचते रहते कि किस प्रकार वापस जंगल को लौटें?

एक बार राधू को मौका मिला और वह अमिताभ के घर से भाग निकला। पीछे फुलवारी में से होकर वह भागा और तेजी से दौड़ता ही गया। काफी देर तक दौड़ने के बाद जंगल में जाकर उसने सांस ली। उसे डर था कि मालिक के घर का कोई व्यक्ति कहीं उसे फिर न पकड़ ले जाए।

राधू लता के झुंडों के बीच बैठकर सुस्ता ही रहा था तभी झाड़ियों में से मुन्नू खरगोश निकला। राधू को देखते ही मुन्नू खुशी से उछल पड़ा। बड़े दिनों से राधू जंगल में गायब था। कहो मित्र! तुम कहाँ चले गए थे? राधू के कंधे पर हाथ रखते हुए मुन्नू ने पूछा।

अपने बिछुड़े हुए मित्र से मिलकर राधू भी बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपनी सारी कथा सुनाई कि किस प्रकार उसे बंदी बना लिया गया था और कैसे वह छूटकर आया है?

"तो इसका मतलब यह हुआ कि तुम मूर्ख हो। ठहरो मैं अभी दौड़कर तुम्हारे लिए खाना लाता हूँ।" मुन्नू बोला।

मुन्नू तेजी से वहाँ से चला और एक गाजर के खेत में घुस गया। उसने कई गाजर उखाड़ी, कुछ फल तोड़े और राधू के पास ले गया।

खा-पीकर राधू को थोड़ी तसल्ली मिली। मुन्नू बोला—"चलो अब घर चलो।"

"मैं घर बाद में जाऊँगा। मैं पिंजरे में अपने तीन दोस्तों को छोड़कर भागा हूँ। जब तक मैं उन्हें छुड़ा नहीं लेता, तब तक मुझे चैन कहाँ? मित्र वही है जो दुःख-मुसीबत में साथ दे। अपने दोस्तों को आपत्ति में छोड़कर मैं सुख से रहूँ तो मुझे भी धिक्कार है।" राधू बोला।

"पर तुमने उन्हें छुड़ाने का क्या उपाय सोचा है?" मुन्नू ने पूछा।

राधू अपने सिर पर हाथ रखकर कुछ देर तक बैठा-बैठा सोचता रहा, फिर सहसा वह उछल पड़ा। एक बड़ा अच्छा उपाय मेरी समझ में आया है। वह खुशी से बोला।

"क्या?" मुन्नू पूछने लगा।

राधू बोला—"अपना जो मित्र है न कुटकुट चूहा, उसके पास चलते हैं। कुटकुट के दाँत बड़े पैने हैं। रात में चुपचाप जाकर कुटकुट पिंजरे के तारों को काट देगा। इस प्रकार तीनों बंदी खरगोश बाहर निकल आएँगे।" मुन्नू को भी राधू का यह उपाय पसंद आया। दोनों तुरंत कुटकुट चूहे के घर गए। कुटकुट को उन्होंने सारी बातें बताईं—"अरे! मैं अपने मित्रों की कुछ सहायता कर पाऊँ, यह मेरा सौभाग्य ही होगा।" कुटकुट अपनी मूँछ और पूँछ हिलाता हुआ बोला। वह तुरंत चलने को तैयार हो गया।

"अभी नहीं, रात को चलेंगे। जब घर के सदस्य सो जाएँगे, तब तुम्हें काम करने में सुविधा रहेगी।" राधू ने समझाया।

रात में अचानक बहुत तेज पानी पड़ने लगा। "मुन्नू! अब कैसे चलेंगे कुटकुट भाई?"

कुटकुट बोला—"मनस्वी एक बार जिस काम को करने की सोच लेते हैं, उसे कठिनाइयों में भी पूरा किया करते हैं। संकल्प दृढ़ रहना चाहिए, फिर बाहरी कठिनाइयाँ हमारा रास्ता नहीं रोक सकतीं। हम आज ही अपने मित्रों को मुक्त कराएँगे।"

पानी और आँधी में भी कुटकुट चूहा, राधू और मुन्नू खरगोश निकल पड़े। पानी से जैसे-तैसे बचाव करते हुए वे अमिताभ के घर तक पहुँचे। आगे-आगे राधू खरगोश चलकर रास्ता दिखा रहा था। घर की नाली में होकर तीनों घुसे। राधू उस कमरे में उन्हें ले गया, जहाँ तीनों खरगोश पिंजरे में बंद थे। कमरे में कोई घर का सदस्य नहीं था। इसलिए कुटकुट चूहे ने बड़े आराम से अपना काम प्रारंभ कर दिया। पिंजरे में बंद तीनों खरगोश राधू और मुन्नू को देखकर उछल पड़े।

"ठहरो! अभी थोड़ी से देर में तुम सब कैद से छूट जाते हो।" राधू बोला।

राधू, मुन्नू और कुटकुट चूहा तीनों ने मिलकर पिंजरे को काटना प्रारंभ किया। तार पतले-पतले थे, पर थे बड़े-बड़े। इन तीनों के दाँत दुःखने लगे। थोड़ी सी देर की बात है, बस यह अभी कटा जाता है। ऐसा कहकर राधू खरगोश सभी का उत्साह बढ़ा रहा था।

"हमने जो काम सोचा है उसे हर हालत में पूरा करके ही दम लेंगे।" कुटकुट चूहा कह रहा था।

लगन और परिश्रम से कौन सा काम पूरा नहीं होता? थोड़ी सी देर में उन्होंने पिंजरे के कुछ तार काट डाले और कुछ टेढ़े कर दिए। पिंजरे में बैठे तीनों खरगोश तेजी से बाहर निकल आए।

बाहर आकर वे मुसीबत में काम आने वाले इन तीनों साथियों से गले मिले। बार-बार उन्हें धन्यवाद दिया। एक खरगोश बोला— "मित्रो! धन्य है तुम तीनों का साहस जो इतने आँधी-पानी में भी तुम निकल पड़े।"

तीनों खरगोश राधू से कहने लगे—"राधू भैया! तुम हमारे सच्चे मित्र हो, सच्चे हितैषी हो। सच्चा मित्र अपने मित्र का दुःख नहीं देख सकता। तुम्हारे परिश्रम और योजना से ही आज हम कैद से छूट पाए हैं।"

मुन्नू खरगोश बोला—"राधू की यह विशेषता है कि मुसीबत पड़ने पर भी यह धैर्य से काम लेता है। आपत्ति पड़ने पर भी यह विवेक-बुद्धि नहीं खोता। जो दुःख में भी घबराता नहीं है, बुद्धि से काम लेता है, उसका भला कौन सा काम अधूरा रह सकता है?"

"हमें भी राधू भैया की भाँति साहसी और परोपकारी बनना चाहिए।" तीनों खरगोश बोले।

चलो अब घर चलते हैं। आज तुम सब की दावत मेरे घर पर है। तुम्हारी भाभी प्रतीक्षा कर रही होगी। कुटकुट चूहा बोला।

सब खुशी-खुशी कुटकुट चूहे के घर की ओर चल पड़े। कैद से मुक्त होने पर तीनों खरगोश खुशी से दौड़ते जा रहे थे।

कुटकुट चूहा बोला—"जो सुख स्वतंत्रता में है, वह परतंत्रता में कहाँ है? जंगल में भूखे रहकर भी, कठिनाई सहकर भी हम प्रसन्न रहते हैं। पिंजरे में भरपूर खाना मिलने पर भी मन दुखी रहता है। सच है—स्वतंत्रता ही सच्चा सुख है।"

सभी ने कुटकुट चूहे के समर्थन में अपना सिर हिलाया। तभी कुटकुट चूहे का घर आ गया और सभी दावत खाने उसमें घुस पड़े।



नदी पार की दावत

रावी नदी के किनारे घना जंगल था। उसमें बहुत से जानवर रहा करते थे। एक बार भास्कर नाम के एक हाथी और कांत नाम के एक बंदर में गहरी दोस्ती हो गई। दोनों साथ-साथ रहते थे, साथ-साथ घूमा करते थे। एकदूसरे की सहायता करते थे। जंगल के सभी जानवर भास्कर से कहते कि कांत बड़ा चालाक है, कभी भी तुम्हें धोखा दे सकता है, पर भास्कर उनकी बात पर कभी ध्यान नहीं दिया करता था।

एक दिन कांत एक बहुत ऊँचे बरगद के पेड़ पर चढ़ गया। वहाँ बैठकर कुछ देर तक वह गूलर खाता रहा। फिर उन्हें खाते-खाते उसका मन भर गया तो एक ऊँची शाखा पर चढ़कर इधर-उधर देखने लगा। सहसा उसकी निगाह नदी के पार गई। वहाँ ऊँचे-ऊँचे गन्नों का हरा-भरा खेत था। इतने अच्छे गन्ने देखकर कांत का मन ललचा गया।

"पर गन्ने मिल कैसे सकते हैं?" उसने मन ही मन सोचा। क्योंकि गन्ने पाने के लिए नदी पार करनी पड़ती और कांत नदी पार कैसे कर सकता था?

एकाएक उसे अपने मित्र भास्कर का ध्यान आया। बस फिर क्या था? वह तुरंत ही उछलता-कूदता भास्कर के पास पहुँचा और बोला—"दोस्त चलो आज तुम्हें एक बढ़िया सी दावत दूँ।"

"किस चीज की दावत दोगे मुझे?" भास्कर ने अपने दाँत निकालते हुए पूछा।

"तुम्हारी सबसे प्रिय चीज गन्ने की दावत दूँगा।" कांत कहने लगा।

"पर गन्ने तो नदी के उस पार लगे हुए हैं। तुम कैसे नदी पार कर पाओगे दोस्त?" भास्कर ने पूछा।

कांत बोला—"मैं तुम्हारी पीठ पर बैठ जाऊँगा। इस प्रकार दोनों उस पार जाएँगे।"

भास्कर ने ऐसा ही किया। दोनों नदी के उस पार गन्ने के खेत में पहुँच गए। दोनों दोस्त गन्ने खाने में जुट गए। कांत का मन जल्दी ही भर गया, पर भास्कर का पेट अभी भरा न था। वह गन्ने खाने में जुटा हुआ था, कांत इधर-उधर उछल-कूद मचाने लगा। जोर-जोर से आवाज करने लगा।

भास्कर बोला—"कांत! तुम इस तरह शोर न मचाओ। तुम्हारा शोर सुनकर खेत का मालिक आ जाएगा। फिर वह दोनों को यहाँ से मार भगाएगा।"

कुछ देर तक तो कांत चुप रहा, पर अंत में उससे न रहा गया। वह फिर उछल-कूद करने लगा। जोर-जोर से शोर करने लगा। खेत के रखवाले ने जब कांत की आवाज सुनी तो डंडा लेकर दौड़ा। चतुर कांत तुरंत ही खेत के बाहर दौड़ गया। रखवाला आया तो उसने भास्कर को बैठे देखा। बस फिर क्या था? उसने पीछे से भास्कर पर ही आठ-दस डंडे कसकर जमा दिए।

चोट खाकर भास्कर चिंघाड़ उठा। वह तुरंत खेत से बाहर भागा। मन ही मन उसे कांत पर बड़ा गुस्सा आ रहा था; क्योंकि उसके कारण ही आज भास्कर को इतनी चोट खानी पड़ी थी।

भास्कर सीधा नदी की ओर दौड़ा। तभी उसने सुना कि कांत पीछे से पुकार रहा है—"रुको दोस्त! मैं भी आ रहा हूँ। इस अनजान प्रदेश में छोड़कर न जाओ।"

भास्कर ने मन ही मन में सोचा कि आज इसे सबक सिखाऊँगा और रुक गया। उसने कांत को पीठ पर बैठा लिया।

पानी में पहुँचकर भास्कर बैठ गया। अब तो कांत घबराने लगा। बोला—"अरे-अरे! यह तुम क्या कर रहे हो? ऐसे तो मैं डूब जाऊँगा।"

"मेरी चोट में बड़ा दरद हो रहा है। मैं तो यहीं पानी में लेटूँगा।" भास्कर बोला।

अब कांत गिड़गिड़ाने लगा। बोला—"मैं तुम्हारी पीठ सहला देता हूँ। तुम लेटना नहीं, नहीं तो मैं डूब जाऊँगा।"

"पर मैं तो दरद के मारे मरा ही जा रहा हूँ।" भास्कर ने कहा और तुरंत नदी में डुबकी लगा ली।

"अब तो नदी का पानी कांत की आँख, नाक, कान और गले में घुस गया। उसका दम सा घुटने लगा।"

"भास्कर! मित्र मुझे बचा लो। अब मैं कभी भी तुम्हारा बुरा नहीं करूँगा।" रोते हुए कांत ने कहा।

तुरंत भास्कर उठ खड़ा हुआ। अब कांत की जान में जान आई। भास्कर तेजी से किनारे की ओर बढ़ा। अपनी पीठ पर से उसने कांत को उतारा और बोला—"कांत! नदी में नहाने का मेरा कोई विशेष विचार नहीं था। मैं तुम्हें सबक देना चाहता था। सदैव अपने मन की करना अच्छा नहीं होता। परिस्थिति देखकर कार्य करना चाहिए कि कब क्या करना उचित है और क्या अनुचित? जो हर स्थिति में अपने मन की करता है, उससे बड़ा मूर्ख और कोई नहीं है।"

"मैंने क्या किया है अपने मन का?" कांत पूछने लगा।

जब मैं गन्ने खा रहा था तो तुमने जोर-जोर से आवाज क्यों की? तुम अपने पर जरा भी नियंत्रण न रख सके? तुम यह न सोच पाए कि इससे तुम्हारे मित्र पर विपत्ति आ सकती है। यह क्या तुम्हारा मित्र के साथ विश्वासघात नहीं है? भास्कर ने उत्तेजित होते हुए पूछा।

कांत उसके पैरों पर गिर पड़ा। बोला—"दोस्त! तुम ठीक कहते हो। वह मेरी भयंकर भूल थी। मेरे मनमानी करने के कारण ही तुम्हें ऐसी चोट सहनी पड़ी है। जो भी कार्य हम करें, सोच-समझकर करें। कोई कार्य ऐसा न करें, जिससे दूसरे का कोई अहित हो। अपने लाभ के साथ-साथ दूसरे के लाभ का भी ध्यान रखें।"

"अब तुम बिलकुल सही रास्ते पर हो, भास्कर ने प्रसन्न होते हुए कहा। भास्कर ने अपनी सूँड़ बढ़ाई और कांत ने अपना हाथ। दोनों ने सदैव एकदूसरे का हित ध्यान में रखने की प्रतिज्ञा ली और विदा हुए।"



संगठन की शक्ति

पीपल के एक पेड़ की जड़ में बहुत सारी चींटियाँ घर बनाकर रहती थीं। वे सभी बड़े सहयोग से काम करती थीं। सदैव मिल-जुलकर काम करती थीं। यही कारण था कि उन्हें किसी बात की परेशानी नहीं थी। सुबह होते ही सारी चींटियाँ तेजी से अपने काम में जुट जाती थीं। कुछ तो दिन में बिल की सफाई करतीं, कुछ चींटियाँ भोजन की खोज में निकल पड़तीं। इस प्रकार बड़े सुख से वे चींटियाँ रह रही थीं।

एक बार की बात है कि चींटियों की एक कतार खाना खोजने निकली। कतार में बहुत सी चींटियाँ थीं। वे सभी अलग-अलग जगह चली गईं। चानी नाम की एक चींटी किसी रसोईघर में जा घुसी। वहाँ उसने देखा कि थाली में चीनी भरी रखी है। चानी थाली में घुस गई। वहाँ जी भरकर मीठी-मीठी चीनी खाई। फिर उसने सोचा कि अपनी सहेलियों को बुला लाती हूँ। सभी मिलकर यहाँ से चीनी ले जाएँगे।

चानी ने चीनी का एक दाना अपनी सहेलियों को चखाने के लिए मुँह में दबाया और चल पड़ी।

रसोई के एक कोने में बैठा तिलचट्टा चानी की हरकतों को बड़े ध्यान से देख रहा था। वह कहने लगा—"बुरा न मानना बहन! तुम इतनी देर से पेट भर के चीनी खा रही हो। फिर यह चीनी तुम किसलिए ले जा रही हो?"

तिलचट्टा ने अपनी मूछों को फड़फड़ाया और बोला—"ओह! तुम चींटियों की बुद्धि का भी जवाब नहीं। एकदूसरे के लिए मरी जाती हो। यही कारण है कि तुम सारे दिन काम में जुटी रहती हो।

अरे अपना-अपना काम अलग-अलग करो और कम समय में छुट्टी पा जाओ।"

"पर दादा! साथ काम करने में, मिल-जुलकर रहने में जो आनंद है, वह अकेले में कहाँ है?" चानी ने पूछा।

तिलचट्टा बोला—"अरी! अकेले काम करने में तो और भी आनंद है। जल्दी से अपना काम करो, छुट्टी पाओ फिर सारे दिन आराम करो। मुझे ही देखो जब भूख लगती है, खा लेता हूँ, फिर मजे से आराम करता हूँ। न किसी की चिंता और न किसी की परवाह।"

चानी चींटी भी तिलचट्टे की बातों में आने लगी। जैसा साथी होता है, वैसे ही विचार बन जाते हैं। चानी सोचने लगी कि मैं सुबह से शाम तक भाग-दौड़ करती ही रहती हूँ। मेरा पेट तो छोटा सा है। जल्दी ही भर जाता है, फिर दूसरों के लिए क्यों मरूँ-खपूँ? क्यों न अकेले ही रहूँ?

चानी तिलचट्टे से बोली—"तुम ठीक कहते हो दादा! मैं भी तुम्हारी तरह मजे में अकेले ही रहूँगी।"

फिर चानी लौटकर अपनी सहेलियों के पास नहीं गई। तिलचट्टे की कुसीख से उसके विचार बदल गए। वह सोचने लगी कि मैं रहूँगी कहाँ? जल्दी से नया घर बनाना चाहिए। पर इतनी जल्दी नया घर बनाना भी तो संभव न था। सहसा चानी को पेड़ पर बने कोटर का ध्यान आया। उसने सोचा ठीक है, कुछ दिन कोटर में ही रहूँगी। तब तक कुछ सामान जमा कर लूँगी, क्योंकि जल्दी ही सरदियाँ आने वाली हैं। इसके बाद घर बनाऊँगी।

चानी ने पेड़ के कोटर में अपने लिए सामान जमा करना शुरू कर दिया। वह बार-बार रसोईघर में आती और चीनी के दाने मुँह में दबाकर ले जाती। इस तरह उसने काफी चीनी और अन्न इकट्ठा कर लिया। आते-जाते वह अपनी सहेलियों से मुँह छिपाती थी, उनसे बचकर जाती थी, जिससे वे कुछ पूछें नहीं। चानी यही

सोचती थी कि अबकी सरदियाँ बड़े आराम से, बिना कुछ काम करे गुजारूँगी।

पर चानी का सोचना, सोचना भर ही रह गया। एक रात बड़ी तेज वर्षा हुई, खूब ओले पड़े। कोटर में अकेली पड़ी-पड़ी चानी घबराने लगी। वह ठंढ से ठिठुर उठी। उसे अपनी सहेलियों की मिट्टी के गरम घर की याद आई। वर्षा होती जा रही थी। वर्षा की बौछारों ने चानी की सारी चीनी बहा डाली। सारा कोटर भीग गया। उसमें चानी का टिकना असंभव हो गया, जैसे-तैसे वर्षा रुकी। चानी सूखी जगह की तलाश में कोटर से निकली, पर सारा पेड़ ही भीगा पड़ा था। कहीं पैर रखने की जगह नहीं थी। अब चानी घूमते-घूमते थक भी बहुत चुकी थी। सहसा उसका पैर फिसला और वह नीचे गिर पड़ी। गिरकर वह बेहोश हो गई।

सुबह जब धूप निकली तब बहुत सी चींटियाँ पीपल के पेड़ की जड़ में बने अपने घर में से निकल पड़ीं। वह चिल्ला उठीं—"अरे! यह चानी तो यहाँ है। सप्ताह भर से हम इसे खोज रहे थे।"

सारी चींटियाँ चानी के आस-पास जमा हो गईं। सभी ने मिल-जुलकर उसकी सेवा की और जल्दी ही उसकी बेहोशी दूर कर दी।

चानी ने आँखें खोली तो सारी सहेलियों को अपने आस-पास जुटे पाया। अरे! तुम ठीक तो हो न, तुम्हें क्या हो गया था? तुम कहाँ चली गईं थीं? इस प्रकार वे अनेक प्रश्न कर रही थीं। उनकी बातें सुनकर चानी का दिल भर आया। वह मन ही मन अपने आप को धिक्कारने लगी। वह सोच रही थी कि मैं कितनी स्वार्थी हूँ, कितने नीच विचारों की हूँ? अपनी इन ममतामयी सहेलियों को छोड़कर क्यों अलग हुई। दुःख-सुख में एकदूसरे से सहारा मिलता है। सभी मिल-जुलकर रहें, इसी में आनंद है।

चानी बोली—"मेरी प्यारी सहेलियो! मैं रास्ता भूल गई थी। मैं तिलचट्टे के बहकावे में आ गई थी। मुझे माफ कर दो और फिर अपने साथ रख लो।"

"अरे! तुम तो हमारे साथ ही रहोगी। हम तो सप्ताह भर से तुम्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर परेशान हो रहे हैं।" सारी चींटियाँ कहने लगीं।

फिर वे सभी चानी को अपने साथ बिल में ले गईं। वहाँ उसे खिलाया-पिलाया और खूब सत्कार किया।

"ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं सही राह पर आ गई हूँ।" चानी ने मन ही मन में कहा।

इसके बाद वह सभी के साथ मिल-जुलकर रहने लगी, काम करने लगी। अब चानी दूसरों को सदा यही उपदेश दिया करती है कि मिल-जुलकर रहना चाहिए, इसी में आनंद है।



सही रास्ता

जाड़े शुरू होने वाले थे, इसलिए सारी की सारी चींटियाँ भोजन जमा करने में जुटी हुई थीं। शाली और रेनु चींटी भी खाने की तलाश में सुबह ही निकल जाती थीं। दोनों को चिंता थी कि सरदियों से पहले ही सामान इकट्ठा कर लें, जिससे बच्चों को परेशानी न हो। जाड़ों में दुःख न उठाना पड़े।

शाली और रेनु कभी किसी खेत में जातीं और कभी किसी घर में, अपने मुँह में कभी गेहूँ का दाना लातीं, कभी चीनी लातीं, कभी दाल लातीं तो कभी कोई कीड़ा ही उठा लातीं। बार-बार

आकर ये अपने मुँह की चीजें अपने-अपने बिलों में रख जातीं। इस प्रकार दिन में कई-कई चक्कर लगाकर वे खाने का सामान जुटातीं। दिन में सुस्ताना, आराम करना तो दोनों ने जैसे जाना ही न था। वे अपनी धुन की पक्की थीं, निरंतर काम करती रहती थीं।

शाली और रेनु के घर के पास ही रोहू नाम की एक चींटी भी रहती थी, वह बड़ी आलसी थी, कुछ काम करती न थी। सारे दिन पड़ी-पड़ी अलसाती रहती थी। जब उसे बहुत भूख लगती थी या जब उसके छोटे-छोटे बच्चे भूख से रोने लगते थे, तब कहीं जाकर वह खाने की तलाश में निकलती थी। रोहू के इस आलसीपन के कारण उसके बच्चे तंग रहते थे। वे भी प्रायः भूखे ही रह जाया करते थे।

रोहू के बच्चे देखते थे कि पड़ोसी चींटियों के बच्चे अच्छी-अच्छी चीजें खाते हैं। कभी वे चीनी खाते हैं तो कभी दाल, कभी रोटी खाते हैं तो कभी मिठाई। रोहू के बच्चों को अधिकतर मिलते हैं, मरे-गले, कीड़े-मकोड़े या सूखा अन्न। उसे खाते-खाते वे ऊब गए थे। एक दिन रोहू का छोटा बच्चा बोला—"माँ! तुम सदैव रूखा-सूखा खाना खिलाती हो। उनकी माँ उन्हें कितना प्यार करती हैं, जो तरह-तरह की अच्छी-अच्छी चीजें लाकर खिलाया करती हैं।"

रोहू ने बच्चे की बात सुनी तो उसे झिड़क दिया। बोली—"मैं इससे ज्यादा मेहनत नहीं कर सकती। तुम बड़े हो जाओ तो अपने आप अच्छी चीजें खाना।"

बेचारे बच्चे चुप रह जाते। माँ से वे कह भी क्या सकते थे?

शाली और रेनु चींटी जब खाना ढूँढ़ने जातीं तो देखतीं कि रोहू चींटी आराम से सोई है। वे आपस में कहतीं—"देखो! जाड़े पास आ रहे हैं। इसके छोटे-छोटे बच्चे हैं। यह तो कुछ भी सामान एकत्रित नहीं करती। जाड़ों में क्या खाएगी और क्या बच्चों को खिलाएगी?"

एक दिन आखिर उन दोनों से रहा न गया। वे रोहू के पास पहुँचीं। शाली बोली—"बहन! क्या तुम जाड़े के लिए खाने का सामान नहीं जुटा रहीं?"

"ओह! अभी से क्या चिंता करना? समय आने पर देखा जाएगा," रोहू बोली।

शाली और रेनु तो चली गईं, पर उनकी बात रोहू चींटी के मन पर असर कर गई। वह सोचने लगी—ये ठीक कहती हैं। समय पर एकाएक भोजन जुटाना तो कठिन पड़ जाएगा, पर इतनी दूर-दूर जाकर भोजन जुटाना तो मेरे वश का नहीं। रोहू बड़ी देर तक सोचती रही कि क्या करना चाहिए? सहसा उसे एक उपाय सूझा और वह मन ही मन मुस्करा उठी।

दूसरे दिन से रोहू ने उस उपाय के अनुसार काम करना शुरू कर दिया। जब शाली और रेनु अपने-अपने घरों से जातीं तो रोहू वहाँ से थोड़ा-थोड़ा सामान चोरी करके ले आती। कई दिनों तक रोहू इसी तरह चोरी करती रही। जल्दी ही उसका घर भी तरह-तरह के भोजन से भर उठा।

इधर शाली और रेनु परेशान थीं कि वह सारे दिन मेहनत करके सामान जुटाती हैं, पर उनका सामान आधा ही मिलता है। वह आखिर कहाँ चला जाता है? शाली बोली—"जरूर हमारे पीछे कोई और आता है और चोरी करके चला जाता है।"

"पर चोर को ढूँढ़ा कैसे जाए?" रेनु ने पूछा।

"मुझे तो रोहू पर शक है। सारी चींटियाँ भोजन जुटाने जाती हैं, एक वही आराम से रहती है।" शाली बोली।

"चलो! हम उसके घर चलकर देखें।" रेनु बोली और दोनों सहेलियाँ रोहू के घर की ओर चल पड़ीं। वहाँ उन्होंने देखा कि उनका जमा किया हुआ बहुत सा अन्न रोहू के घर में है। रेनु और शाली ने आँखों से एकदूसरे को कुछ इशारे किए।

शाली कहने लगी—"रोहू! तुमने तो अन्न जुटा लिया है।"

"और क्या?" रोहू आँखें नचाती हुई बोली।

"पर तुम कभी हमें भोजन की तलाश में घूमती हुई तो मिलती नहीं हो।" रेनु ने कहा।

इतने में रोहू का छोटा बच्चा बोल पड़ा—"माँ तो जरा सी देर में जाकर अन्न जुटा लातीं हैं। पड़ोस में ही कहीं जाती हैं और जल्दी ही वापस आ जाती हैं।"

रोहू ने अपने बच्चे को आँखों से धमकाया।

"रोहू तुम बुरा न मानना। तुमने यह अन्न हमारे घरों से चुराया है।" शाली और रेनु दोनों एक साथ बोलीं।

"ऐसा तुम किस आधार पर कह रही हो?" रोहू ने जोश में आकर पूछा।

"गुबरीला दादा कह रहे थे कि हमारे घरों से जाने के बाद तुम रोज हमारे घरों में घुसती हो।" शाली बोली।

रोहू चुप हो गई। वह कहती भी क्या? गुबरीला तो उसे रोज ही रास्ते में मिलता था।

रेनु समझाने लगी—"देखो बहन! चोरी करना बहुत बुरा है। चोरी करके जो चीज हम लेते हैं, वह कभी फलती नहीं है। उसका सदा बुरा परिणाम ही हमें मिला करता है। चुराकर जो अन्न खाया जाता है, वह बीमार ही बना डालता है। हमें परिश्रम और ईमानदारी से कमाना चाहिए।"

रोहू के बच्चों की समझ में भी अब बात आ गई थी कि माँ कैसे अन्न इकट्‌ठा करती है? वे सभी बोल पड़े—"माँ! मौसियों को उनका सामान लौटा दो। हम चोरी की कमाई नहीं खाएँगे, नहीं खाएँगे। तुम खाना इकट्‌ठा करने नहीं जाओगी तो हम सब मिलकर चले जाएँगे। अपने नन्हे हाथ-पैरों से जितनी मेहनत संभव होगी, कर लेंगे, पर खाएँगे ईमानदारी का ही।"

बच्चों की इस प्रताड़ना से रोहू की आँखें खुल गईं। वह बोली—"बच्चो! तुम ठीक कहते हो। तुम सभी ने मिलकर आज मुझे सही रास्ता दिखा दिया है।"

फिर उसने रेनु और शाली से कहा—"बहनो! मैं अपना अपराध स्वीकार करती हूँ। मैंने तुम्हारे घरों से ही चोरी की है। तुम अपना यह सामान ले जाओ। चोरी का दंड जो मुझे देना चाहो वह दे दो। मैं उसे स्वीकार करूँगी।"

शाली बोली—"तुमने अपना अपराध स्वीकार किया है, यह जानकर हमें बड़ी खुशी हुई। गलती तो सभी से होती ही रहती है। बुरा वह नहीं है जो कभी गलती नहीं करता। बुरा वह है जो गलत करके भी उसे स्वीकार नहीं करता। जो अपनी गलती मानते हैं, वही उसे दूर कर पाते हैं।"

रेनु ने कहा—"तुम्हारे लिए यही दंड है कि तुम जाड़ों के लिए अपना भोजन स्वयं जुटाओ।"

"हाँ, वह तो मैं करूँगी ही। तुम सभी ने मिलकर मेरी आँखें खोल दी हैं। अब मैं मेहनती बनूँगी। आलसी कभी सुख नहीं पाता, किसी का सम्मान नहीं पाता। मैंने बहुत सा जीवन आलस्य और प्रमाद में व्यर्थ गँवा दिया। रोहू बोली और फिर उसने शाली-रेनु को खुशी-खुशी उनका सारा अन्न वापस कर दिया।"

उसी दिन से रोहू ने अपना सारा आलस्य त्याग दिया। अब वह सारे दिन मेहनत करती है। उसकी बहुत सी सहेलियाँ भी बन गईं हैं। सभी उससे खुश रहती हैं। रोहू के बच्चे भी उससे बहुत प्रसन्न रहते हैं।



सोच-विचार कर काम करें

गेहूँ के खेत की मेड़ पर अमरूद का एक पेड़ था। उसी पेड़ पर चंपा गिलहरी रहा करती थी। अमरूद और गेहूँ के दाने खाते-खाते, एक जगह रहते-रहते चंपा ऊब गई। उसने सोचा कि कुछ दिनों के लिए अपनी सहेली के पास चलना चाहिए। चंपा की सहेली नीरा नाम की गिलहरी थी। वह शहर में रहती थी। शहर में एक बहुत बड़ा विद्यालय था। वहीं नीरा रहा करती थी। विद्यालय खूब बड़ा था, उसमें तरह-तरह के पेड़ लगे थे। खूब घास और फुलवारी लगी थी। नीरा बड़े आराम से एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर फुदकती फिरती थी। हरी-हरी घास में घूमती रहती थी।

चंपा चलते-चलते नीरा के यहाँ पहुँची। नीरा अपनी सहेली को देखकर खुशी से भर उठी। उसने अपनी लंबी पूँछ जोर-जोर से हिलाकर-दोड़कर उसका स्वागत किया। दोनों सहेलियाँ नीम की छाया में बैठी देर तक बातें करती रहीं। दोनों अपने-अपने दुःख-सुख की आप बीती बताने लगीं।

सहसा नीरा को ध्यान आया कि उसने अपनी सहेली से कुछ खाने की बात नहीं पूछी है। "अरे! मैं तो बातों में भूल ही गई कि तुम भूखी होंगी। मैं अभी जाकर तुम्हारे लिए खाना लाती हूँ।" नीरा ने कहा और वह खाना लेने दौड़ पड़ी।

विद्यालय में लड़कियाँ तरह-तरह की चीजें खाती थीं। उसकी कुछ जूठन बच जाती थी। नीरा दौड़कर गई और वहाँ से कचौड़ी, मूँगफली आदि चीजें उठा लाई।

चंपा ने बड़ा स्वाद ले-लेकर उन्हें खाया। बड़े दिनों के बाद उसे ऐसा भोजन मिला था, वह तो प्रतिदिन फल और गेहूँ ही खाया

करती थी। तुम्हारे यहाँ का तो भोजन बहुत ही स्वादिष्ट है। उसने नीरा से कहा।

"चलो केंटीन में चलते हैं। वहाँ तरह-तरह की चीजें हैं, उन्हें खाकर तुम्हें खुशी होगी।" नीरा बोली।

दोनों सहेलियाँ एक खिड़की के रास्ते केंटीन में जा पहुँचीं। तरह-तरह की चीजों से केंटीन महक रही थी।

"तुम क्या खाना पसंद करोगी?" नीरा ने पूछा। एक भगोने में बड़ी अच्छी खुशबू आ रही थी। इसमें क्या है? चंपा ने पूछा।

"आलू-छोले।" नीरा ने जवाब दिया।

दोनों सहेलियों ने भरपेट आलू-छोले खाए। तभी सहसा मालिक के आने की आवाज आई। दोनों वहाँ से तेजी से भाग छूटीं।

"अब तुम क्या पीओगी? चाय या शरबत।" नीरा पूछने लगी।

"ओह! मेरा तो पेट भर गया है। इस समय तो मुझे खाली पानी चाहिए।"

एक गड्ढे में पानी भरा था। दोनों ने पी लिया।

"चलो मैं तुम्हें विद्यालय में घुमाती हूँ।" नीरा ने कहा।

नीरा और चंपा दोनों हरी-हरी मखमल सी घास पर बहुत देर तक घूमती रहीं। वहाँ के सुंदर वातावरण ने चंपा के रास्ते की सारी थकान दूर कर दी।

चंपा नीरा के यहाँ कई दिनों तक रही। खूब खुली जगह, चारों ओर हरियाली और पेड़। खाने को अनेकों तरह की चीजें। चंपा को यह सब बड़ा अच्छा लगा। नीरा बोली—"चंपा! तुम घर जाकर क्या करोगी? अब तो तुम हमेशा के लिए यहीं मेरे पास रह जाओ।"

"नहीं बहन! मैं दो-चार दिनों में वापस चली जाऊँगी। मित्र के यहाँ हमेशा रहने से स्नेह बढ़ता नहीं, घटता ही है।" चंपा गंभीर होते हुए बोली।

"संभव है तुम्हारी बात ही सच हो।" नीरा कहने लगी।

इसके बाद दोनों सहेलियाँ घूमने निकल गईं। घूमते-घूमते वे एक तालाब के किनारे जा पहुँचीं। चंपा और नीरा तालाब के पास की झाड़ियों में छिपकर बैठ गईं। चंपा को तालाब बड़ा ही अच्छा लगा। उसने इससे पहले कभी तालाब देखा नहीं था। तालाब में कुछ लड़कियाँ नहा रही थीं, कुछ नाव चला रही थीं। चंपा बड़े ध्यान से देखती रही।

"चलो हम भी तालाब में नाव चलाएँगे।" चंपा कहने लगी। फिर तुरंत दौड़कर तालाब के किनारे जा पहुँचीं।

"अरे! रुको तो, रुको तो।" कहती नीरा उसके पीछे दौड़ी।

"चंपा तुम अभी यहाँ नई-नई आई हो। तुम्हें पता नहीं है कि यह तालाब बहुत गहरा है। इससे अलग ही रहो।" नीरा ने उसे समझाया।

"अरे! तुम तो बड़ा डरती हो। चलो किनारे पर ही थोड़ा सा नहाते हैं।" चंपा ने कहा और तुरंत तालाब में उतर पड़ी।

पर यह क्या? छपाक आवाज हुई और चंपा तालाब में डूबने लगी। अब वह सहायता के लिए जोर-जोर से चिल्लाने लगी। चंपा की यह स्थिति देखकर नीरा पहले तो सकपका गई, किंतु तुरंत सहायता के लिए दौड़ी। उसने जल्दी से एक शहतीर का लंबा टुकड़ा उठाया और तालाब के किनारे फेंका। संयोगवश वह टुकड़ा चंपा के पास जाकर गिरा। पानी में डूबती-उतराती चंपा तुरंत शहतीर के टुकड़े पर चढ़ गई और दौड़कर तालाब के किनारे आ गई।

चंपा अपनी करतूत पर बड़ी शरमिंदा थी। वह हाथ जोड़कर नीरा से बोली—"बहन! मुझे माफ कर दो। तुम्हारी बात न मानकर मैंने बड़ी भयंकर भूल की है। यदि तुम समय पर मेरी सहायता न करतीं तो आज मैं डूब ही जाती।"

नीरा बोली—"भगवान को बहुत-बहुत धन्यवाद कि तुम बच गईं। नहीं तो सोचो कि आज मेरी क्या स्थिति होती? हमें सोच-समझकर काम करना चाहिए। अपने से जो ज्यादा अनुभव रखता

हो, उसकी बात पर विचार करना चाहिए। उसके कहने के अनुसार काम करना चाहिए। जो उतावली में थोड़े से लोभ में आकर काम करता है, वह बाद में दु:ख ही पाता है।''

''तुम ठीक कह रही हो बहन! हमें अपनी ही बात नहीं लगानी चाहिए, दूसरों की बात पर भी ध्यान देना चाहिए।'' चंपा गिलहरी बोली।

चंपा ने उस दिन प्रतिज्ञा की कि अब वह मनमानी नहीं किया करेगी। सोच-विचारकर काम करेगी। उसकी इस प्रतिज्ञा से नीरा बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अपना हाथ चंपा से मिलाया और बोली— ''अपने वचन को ध्यान रखना।''

तीन-चार दिन बाद नीरा ने चंपा को बहुत से उपहार देकर विदा किया।



सबक

अमित के स्टोर की टाँड़ पर सोनी कबूतरी ने अपना घोंसला बनाया था। टाँड़ पर बहुत सा सामान भरा पड़ा था। एक बिस्तरबंद के पीछे, खिड़की के सहारे, सोनी ने कुछ आड़े-तिरछे तिनके रख लिए थे। वहीं उसने दो अंडे दिए। सोनी कबूतरी और मोना कबूतर दोनों बारी-बारी से अंडों की देख-भाल करते।

थोड़े दिन में ही अंडों से प्यारे-प्यारे दो बच्चे निकले। सोनी और मोना बच्चों को देखकर प्रसन्न होते। धीरे-धीरे वे बच्चे बड़े होने लगे। उनके छोटे-छोटे पंख भी निकल आए। अब उनकी

भूख भी बढ़ गई थी, इसलिए सोनी और मोना अधिकतर बाहर रहने लगे। वे सुबह ही खाने की तलाश में निकल जाते। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वे अपनी चोंच में खाने-पीने का सामान भरकर लाते। खिड़की के रास्ते से अंदर जाते। दोनों बच्चे अपनी छोटी-छोटी, लाल-लाल आँखें खोलकर देखते। माता-पिता को देखते ही वे खुशी से भर उठते और खुशी से चीं-चीं करके चिल्ला उठते। सोनी या मोना उनकी चोंच में अपनी चोंच से दाना रखते। बच्चे उसे खाने को लपकते। उसके मुँह में दाना रखकर माता-पिता बाहर खाने की तलाश में निकल जाते। क्योंकि बच्चे बड़े हो रहे थे। सोनी और मोना की चोंच में थोड़ा सा खाना आता था। उससे उनका पेट नहीं भरता था। इसलिए उन्हें बार-बार जाना पड़ता था।

एक दिन की बात है, सोनी और मोना भोजन की तलाश में दूर निकल गए। इधर दोनों बच्चों को भूख लगी। बड़ा बच्चा बोला— "चलो! आज हम खुद दाना तलाशते हैं।"

छोटा कहने लगा—भैया! माँ कहती है कि अभी हमारे पंख छोटे-छोटे हैं। उन्होंने हम से मना किया है कि यहाँ से कहीं उड़कर न जाएँ।

बड़ा बच्चा कहने लगा—"माँ तो ऐसे ही डरती हैं। वे भी हमें बहुत छोटा समझती हैं। देखो! खिड़की से झाँककर बाहर की दुनिया कितनी सुंदर है। मैं तो खुद आसमान में उड़ानें भरने को आतुर हूँ। चलो! हम आज बाहर चलें।"

"पर भाई माँ सुनेंगी तो नाराज होंगी, कहेंगी कि तुमने हमारा कहना नहीं माना। मैं तो माँ की आज्ञा का पालन करूँगा। जब तक वे नहीं कहेंगी, मैं यहाँ से उड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।"

"तो ठीक है। मैं आज अकेले ही सैर करके आऊँगा।" बड़े बच्चे ने कहा। फिर उसने अपने पंख फड़फड़ाए और स्टोर के दरवाजे से बाहर आ निकला।

कबूतर का बच्चा थोड़ी सी ऊँचाई पर कुछ देर ही उड़ पाया। जल्दी ही थक गया। उधर कमरे में अमित और उसके दोस्त भी आ गए। उन्होंने कबूतर के बच्चे को उड़ाया और कमरे में भगाना शुरू कर दिया। एक कमरे से दूसरे कमरे में उड़ते-उड़ते वह तंग आ गया। अब तेजी से वह उड़ भी नहीं पा रहा था। अब उसकी समझ में आ रहा था कि माँ ने घोंसले से बाहर निकलने के लिए क्यों मना किया था।

काफी देर बाद बड़ी मुश्किल से कबूतर का बच्चा स्टोर में आ पाया। वह बच्चों के हुड़दंग से रास्ता भूल गया था। बच्चों ने कपड़ा मार-मारकर स्टोर की ओर भगाया था। उसके अंगों पर कई बार कपड़े की मार भी पड़ चुकी थी। उसके सारे शरीर में दरद हो रहा था।

जैसे-तैसे कबूतर का बच्चा अपने घोंसले में पहुँचा। सोनी कबूतरी दाना लेकर अब वहाँ पहुँची थी। छोटे बच्चे ने सोनी को सारी बातें बता दीं।

कबूतर के बड़े बच्चे ने घोंसले में माँ को बैठे देखा। शरम के कारण उसकी गरदन झुक गई। उसने माँ का कहना जो नहीं माना था। वह बोला—"माँ! मैंने नादानी में तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन किया है। आज ठोकर खाकर मेरी समझ में अच्छी तरह आ गया है कि तुम हमारे भले के लिए ही हमें टोकती हो। बहुत से काम करने को मना करती हो। आज मैं बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाकर आया हूँ।"

सोनी कबूतरी ने अपनी चोंच का खाना बड़े बच्चे के मुँह में रखते हुए कहा—"बेटा! जो बच्चे अपने माता-पिता का कहना नहीं मानते वे सदैव आपत्ति में पड़ते हैं। तुम्हारी शक्तियाँ अभी सीमित हैं। तुम्हारा अनुभव अभी कम है, इसलिए बड़ों की बात मानकर काम करो।"

बड़े बच्चे की समझ में माँ की बात आ रही थी। गुटरगूँ-गुटरगूँ करके उसने माँ की बात का समर्थन किया। सोनी कबूतरी ने कई दिनों तक बड़े बच्चे की मालिश की, तब कहीं जाकर वह ठीक हुआ। इसके बाद फिर उसने कभी अपनी माँ की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।



बंदर की नादानी

उस बरगद के पेड़ पर बहुत से प्राणी रहते थे, पर वे सभी चुन्नू बंदर की शैतानी से बहुत ही तंग आ गए थे। बात भी तंग होने की ही थी। चुन्नू कभी पीछे से चुपचाप जाकर किसी बूढ़े बंदर की पूँछ खींचकर भाग जाता। बंदर पीछे मुड़कर देखे, इतनी देर में चुन्नू गायब। कभी वह किसी डाल को जोर से हिला जाता। इससे घोंसले में बैठी चिड़ियों के नन्हे बच्चे जोर-जोर से डरकर चीं-चीं करने लगते। चिड़ियाँ उड़कर देखने आतीं कि क्या हुआ? इतनी ही देर में चुन्नू भाग खड़ा होता। सोनू गिलहरी के तो चुन्नू पीछे ही पड़ गया था। कभी कहता—"अरी छुटकी! शीशे में अपना शरीर तो देख! भगवान ने तुझे कितनी छोटी सी देह दी है।" कभी कहता—"वाह! तू कैसी धारीदार, रोंयेदार है? जैसे ओढ़ने का कंबल ही हो।"

चुन्नू की बातें सुनते-सुनते सोनी गिलहरी तंग आ गई। कभी-कभी उसका खून खौलने लगता। कभी-कभी वह सोचती थी कि इस दुष्ट को ऐसा सबक दूँ कि यह दूसरों को तंग करना ही भूल जाए, पर सोनी सोचकर मन मसोसकर ही रह जाती थी। क्योंकि उसके दो छोटे-छोटे बच्चे थे। वह जानती थी कि गुस्सा आने पर

चुन्नू अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं देखता है। गुस्से में आकर यह बच्चों को बहुत परेशान कर सकता है।

बरगद के उसी वृक्ष पर एक वृद्ध लंगूर भी रहता था। वह इतना बूढ़ा था कि उसे न तो ठीक से कुछ दिखाई देता था, न वह कुछ काम ही कर सकता था। उसके हाथ-पैर काँपते रहते थे। वह सारे दिन बैठा-बैठा भगवान का भजन करता रहता था। भगत लंगूर के नाम से वह सारे जंगल में प्रसिद्ध था। उस जंगल के सारे जानवर रोज शाम को बरगद के पेड़ के नीचे इकट्ठे हो जाते थे। भगत लंगूर सभी को उपदेश देता था। अच्छी-अच्छी बातें सिखाता था। भगत की इस सेवा के बदले पक्षी उसे अपने-अपने भोजन में से थोड़ा सा अंश निकालकर दे जाया करते थे। वह भी दिन में बस एक बार प्रसाद के रूप में उसे ग्रहण करता था। शेष भोजन वह वृक्ष के सभी पक्षियों में बाँट देता था।

एक दिन भगत लंगूर बैठा भोजन कर रहा था कि तभी अचानक चुन्नू बंदर वहाँ से निकला। उसने देखा कि भगत के खाने में दो मोटे-मोटे रस भरे फूले-फूले मालपुए भी रखे हुए हैं। उन्हें देखकर चुन्नू के मुँह में पानी भर आया। वह समझ गया कि ये मालपुए जरूर कालू कौवे ने दिए होंगे। चुन्नू उससे मालपुए माँगता रहा, पर कालू कौवा उसे दिखा-दिखाकर सारे पुए चट कर गया था। चुन्नू ने गरदन घुमाकर चारों ओर देखा। इस समय वहाँ कोई न था। बस फिर क्या था, वह अपने लालच को न रोक पाया। उसने चुपचाप भगत लंगूर के आगे से एक मालपुआ उठा लिया। जैसे ही वह उसे मुँह में रखने वाला था कि उसने सुना कि सोनी गिलहरी जोर-जोर से चीख रही थी—"चोर-चोर! पकड़ो।" सोनी की पुकार पर सारे पक्षी वहाँ जमा हो गए थे। वास्तव में हुआ यह था कि सोनी चुपचाप पत्तों की आड़ में छिपी सारी बातें देख रही थी।

पक्षियों को सोनी गिलहरी ने सारी बातें बताईं कि किस प्रकार भगत के खाने से यह चुन्नू चोरी कर रहा था। यह सुनकर

सभी पक्षी बड़े नाराज हुए, वे लगे चुन्नू को धिक्कारने। चुन्नू बेचारा शरम से गढ़ गया। मालपुआ उसके हाथ में धरा का धरा रह गया। तेजू बाज ने चलते समय अपनी लाल-लाल आँखें निकालकर चुन्नू से कहा कि अबकी बार यदि उसने ऐसा किया तो उसकी खैर न होगी, उसे बरगद के पेड़ से निकाल दिया जाएगा।

इतना अपमान और लज्जा चुन्नू ने कभी न पाया था। उसने दिनभर कुछ भी नहीं खाया। रातभर वह भूखा बैठा रहा। क्रोध से वह भुनता रहा। उसने सोनी गिलहरी से बदला लेने का निश्चय किया। क्योंकि उसके कारण ही चुन्नू को इतना अपमान सहना पड़ा था।

सोनी को इसकी आशंका पहले से ही हो गई थी। वह मधु-मक्खियों से गुपचुप न जाने क्या बातें कर आई थी।

सुबह सारे पक्षी अपने-अपने काम पर चले गए। चुन्नू बंदर ने देखा कि सोनी गिलहरी भी खाने की खोज में चली गई है। बस फिर क्या था? वह चुपचाप दबे पाँव आया। सोनी गिलहरी के घर की ओर धीरे-धीरे बढ़ने लगा। बरगद के पेड़ की एक छोटी सी खोह में सोनी का घर था। चुन्नू को पता था कि वहाँ उसके छोटे-छोटे बच्चे होंगे। चुन्नू सोच रहा था कि हाथ डालकर उन बच्चों को उस खोह से निकाल लेगा, पर यह क्या? चुन्नू का हाथ तो खोह से बाहर ही नहीं आ रहा था। अब चुन्नू ने ध्यान से देखा कि खोह का छेद तो बड़ा सँकरा था। चुन्नू ने उस पर बिना ध्यान दिए आवेश में हाथ डाल दिया। अब चुन्नू बड़ा परेशान हुआ कि हाथ कैसे निकाले? अभी वह कुछ सोच ही रहा था कि मधु-मक्खियों ने आकर हमला कर दिया। छत्ते से सहस्रों मधु-मक्खियाँ निकलकर उस पर चिपट पड़ीं। अब चुन्नू का एक हाथ तो पेड़ की कोटर में फँसा था और एक हाथ से वह मक्खियाँ उड़ाता हुआ इधर-उधर उछलता-कूदता फिर रहा था। मधु-मक्खियाँ उसे खूब काटती

रहीं। छोड़ दो मुझे, अब मैं कभी भी किसी का बुरा नहीं करूँगा—कहते हुए चुन्नू रोने लगा।

तभी फुदकती हुई सोनी गिलहरी भी वहाँ आ गई। उसने देखा कि मधु-मक्खियों ने चुन्नू को चारों ओर से घेर रखा है। वे उसे खूब काट रही हैं, तंग कर रही हैं। चुन्नू चीख रहा है, रो रहा है। यह देखकर सोनी गिलहरी का हृदय पसीज उठा। उसने मधु-मक्खियों से अनुनय की—"बहनो! अब इसे छोड़ दो। यह मना कर रहा है कि कभी किसी को नहीं सताएगा।"

हाँ-हाँ सच कहता हूँ। अब मैं किसी को तंग नहीं करूँगा। एक हाथ से अपना कान पकड़ते हुए चुन्नू बोला।

मधु-मक्खियों की रानी ने अपनी सेना को कुछ आदेश दिया और सारी की सारी मधु-मक्खियाँ तुरंत ही वहाँ से चली गईं।

अब सोनी गिलहरी चुन्नू के पास आई। उसने अपने तेज दाँतों से पेड़ की कोटर काटनी शुरू की। बड़ी कठिनाई से तब चुन्नू का हाथ वहाँ से निकला। इतनी ही देर में चुन्नू का सारा शरीर सूज गया था। मधु-मक्खियों ने बड़े जोर से काटा था। सोनी दौड़कर नीतू लोमड़ी के यहाँ से दवा लाई। उसे कई दिनों तक चुन्नू के शरीर पर लगाया, तब कहीं जाकर वह ठीक हुआ।

उस दिन से चुन्नू ने दूसरों का मजाक बनाना, उन्हें सताना छोड़ दिया है। अब वह सबकी सहायता किया करता है। सभी उसे बहुत प्यार करते हैं, उससे प्रसन्न रहते हैं।



तीन मित्र

काली कौवा आज बड़ा उदास था। किसी काम में उसका मन नहीं लग रहा था। कभी वह इस पेड़ पर बैठता तो कभी उस पेड़ पर। काँव-काँव करता हुआ बेचैन सा घूम रहा था।

"आओ! घूमने चलें।" बूढ़े गिद्ध ने कहा।

"नहीं काका अभी नहीं जाऊँगा।" कहकर काली कौवा फिर उदास सा बैठ गया। असल में वह अपने मित्र सुंदर हिरण का इंतजार कर रहा था। दो घंटे हो गए, पर सुंदर नहीं आया। काली कौवा घबराहट से भर उठा। कहीं ऐसा तो नहीं कि सुंदर हिरण किसी शिकारी के चंगुल में फँस गया हो? हिरणों के पीछे शिकारी पड़े ही रहते हैं। जंगल के जानवर और पशु-पक्षियों का जीवन उनके कारण बड़े खतरे में रहता है।

तभी काली कौवे ने देखा कि सामने से सुंदर हिरण चला आ रहा है।

"नमस्ते! कौवे भाई।" सुंदर बोला।

काली ने मुँह फिरा लिया, उसे बड़ा गुस्सा आ रहा था।

"क्या बात है, आज तुम कुछ बोल क्यों नहीं रहे हो?" सुंदर हिरण ने फिर पूछा।

काली अब भी कुछ न बोला।

"लो मैं तुम्हारे लिए तो इतनी दूर से दौड़ता-हाँफता चला आ रहा हूँ। रास्ते में कहीं रुका तक नहीं। मेरी साँस फूल रही है और एक तुम हो कि मुँह फुलाए बैठे हो।" अब सुंदर को भी बहुत गुस्सा आने लगा था।

"तो क्यों आए थे तुम? न आते। आने की जल्दी ही क्या थी?" काली ने कहा।

"मुझे क्या पता था कि तुम बोलोगे तक नहीं। नहीं तो मैं न आता।" सुंदर कहने लगा।

"सुबह से तो आँख फाड़-फाड़कर तुम्हारा इंतजार कर रहा हूँ। कहाँ चले गए थे तुम? इतनी देर क्यों लगा ली?" काली का गुस्सा अभी भी कम नहीं हुआ था।

"आज मुझे अपनी पत्नी के साथ जबरदस्ती घूमने जाना पड़ा। घूमते-घूमते बहुत दूर निकल गए। वहाँ से लौटने पर सीधा तुम्हारे ही पास दौड़ता-दौड़ता आ रहा हूँ।" सुंदर बोला।

"ओह! तो जाओ पत्नी के साथ ही घूमो। दोस्त की तुम्हें चिंता भी क्या है?" काली बड़े गुस्से में बोला और मुँह फिराकर बैठ गया।

"अब सुंदर को भी गुस्सा आ गया। ठीक है, नहीं बोलना तो मत बोलो, मैं चला।" उसने कहा और पास की झाड़ी में मुँह लटकाकर बैठ गया।

सुंदर बहुत थका था। बैठते ही उसे नींद आ गई। जब उसकी आँख खुली तब उसने अपने गले में रस्सी का फंदा पड़ा पाया। एकाएक वह समझ नहीं पाया कि यह क्या हुआ? तभी उसकी निगाह झाड़ी के पास खड़े शिकारी पर गई। अब सुंदर की समझ में आ गया कि वह शिकारी की गिरफ्त में फँस चुका है।

शिकारी अपने हाथ में रस्सी की डोर थामे बढ़ रहा था। उसके पीछे-पीछे उदास सुंदर मुँह लटकाए चला जा रहा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे?

तभी काली कौवे ने पेड़ पर बैठे हुए यह दृश्य देखा। वह तुरंत उड़ता हुआ सुंदर के पास जा पहुँचा। सुंदर सोच रहा था कि वह काली से कुछ देर पहले बड़े कड़ुवे ढंग से बातें करके आया है, इसीलिए काली उससे नहीं बोलेगा, पर यह उसका भ्रम ही निकला। काली काँव-काँव करता हुआ कह रहा था—घबराना नहीं मित्र! मैं तुम्हें छुड़ाने का कोई उपाय सोचता हूँ।

काली तुरंत उड़ता हुआ भासुर हिरण के पास गया। भासुर ने पूरी कथा सुनकर कहा—"पर काली! मैं सुंदर की सहायता कैसे कर सकता हूँ? काली ने उसे बड़ा अच्छा उपाय सुझाया। उसे सुनकर भासुर बड़ा ही प्रसन्न हुआ। दोनों सुंदर को छुड़ाने के लिए चल पड़े।"

काली आगे-आगे चलकर रास्ता दिखा रहा था। दोनों ने देखा कि शिकारी धीरे-धीरे चल रहा है। भासुर हिरण रास्ते में साँस रोककर लेट गया, शिकारी की निगाह भासुर पर पड़ी। अरे आज तो खूब शिकार मिल रहे हैं। आज तो बड़ा ही शुभ दिन है। वह खुशी से चिल्लाया।

जिस रस्सी में सुंदर हिरण बँधा था, उसी के दूसरे सिरे से उसने भासुर को बाँधना चाहा। पर तभी एकाएक भासुर छलांग लगाकर भाग गया। शिकारी चौंक उठा, उसके हाथ से रस्सी का सिरा छूटने लगा। तभी काली कौवे ने जाकर तेजी से उसकी नाक पर अपनी चोंच मारी। शिकारी की नाक से खून निकलने लगा। वह दरद के कारण कराह उठा। उससे हाथ से रस्सी छूट गई। सुंदर हिरण रस्सी सहित तेजी से जंगल में भाग गया।

यह देखकर शिकारी विलाप करने लगा—"अरे! मैंने जरा से लोभ के कारण हिरण भी खो दिया और रस्सी भी। न मैं दूसरे हिरण के लालच में पड़ता और न ऐसा होता। सच ही है कि लालची का हमेशा नुकसान ही होता था। लोभ के कारण हानि उठानी पड़ती है।"

सुंदर और भासुर हिरण तथा काली कौवा जब खूब दूर पहुँच गए तो एक पेड़ के नीचे जाकर बैठे। सुंदर कहने लगा—"मैंने तो सोचा था कि काली तुम मुझसे बोलोगे भी नहीं, क्योंकि मैंने कटु वचन बोले थे।"

काली कहने लगा, पर तुम संकट में थे। विपत्ति में बैर-भाव भुलाकर मित्र की सहायता करनी चाहिए। जो मित्र की जरा सी बात

का बुरा मान जाता है, आपत्ति पड़ने पर मुँह फिरा लेते हैं, वे सच्चे मित्र नहीं होते। वे तो मात्र केवल मित्रता का ही ढोंग रचते हैं।

भासुर बोला—"जीवन में सच्चे मित्र बड़ी कठिनाई से मिलते हैं। जो सच्चे मित्र पा लेता है, वह बड़ा भाग्यवान होता है। उसे विपत्तियाँ भी विपत्ति जैसी नहीं लगा करतीं। सुख-दुःख दोनों ही स्थितियों में उसके मित्र भागीदार होते हैं।"

"हमारी मित्रता ऐसी ही पक्की हो।" कहकर तीनों ने हाथ मिलाया। फिर सभी प्रसन्न मन से अपने-अपने घर लौट गए।



स्नेह की शक्ति

छोटू और मोती खरगोश दोनों घूमने निकले। उनकी माँ कहने लगी—"बच्चो! बहुत दूर तक मत जाना। बहुत जल्दी ही घर वापस आ जाना।"

"माँ तुम हमारी चिंता न करना।" हम जल्दी ही घर वापस आ जाएँगे। छोटू ने कहा।

छोटू और मोती दोनों ही अभी छोटे थे। इसलिए उनकी माँ उन्हें अकेले घूमने कम ही भेजा करती थी। दोनों घूमते-घूमते गाजर के खेत में घुस गए। लाल-लाल गाजर देखकर दोनों बड़े खुश हुए और जल्दी-जल्दी गाजर खाने लगे। वे खाते भी जाते थे और चारों ओर देखते भी जाते थे।

मीता लोमड़ी ने छोटू और मोती दोनों को खेत में घुसते हुए देख लिया था। मोटे-ताजे खरगोश देखकर मुँह में पानी भर आया। "आज तो सुबह-सुबह बड़ी अच्छी दावत हो गई। उसने मन ही मन कहा और अपनी मूँछों पर हाथ फिराया।"

मीता चुपके-चुपके दबे पाँव छोटू के पीछे जा पहुँची। वह अभी उसे पकड़ने के लिए लपकी ही थी कि सामने बैठे मोती ने मीता को देख लिया। तुरंत उसने छोटू को अपनी ओर पकड़कर खींचा और वे वहाँ से भाग छूटे।

छोटू और मोती के दिल जोर-जोर से धड़क रहे थे। वे तेजी से भागते ही जा रहे थे, पर मीता लोमड़ी भी शिकार हाथ से छूट जाने से खिझलाई हुई थी। वह भी बराबर उनके पीछे ही दौड़ रही थी। दोनों बार-बार पीछे मुड़कर देख लेते और फिर दौड़ने लगते।

छोटू और मोती दोनों गीली घास पर दौड़ रहे थे। मीता लोमड़ी को भीगी घास पर दौड़ने का अभ्यास न था, इसलिए वह पीछे रह गई। भागते-भागते छोटू और मोती दोनों नदी के किनारे पहुँचे। थोड़ी देर बैठकर दोनों सुस्ताए ही थे कि तभी उनकी दृष्टि दूर से आती मीता पर पड़ी।

"अब क्या करना चाहिए?" छोटू ने कहा।

"घबराने से तो काम चलेगा नहीं भाई। हमें धैर्यपूर्वक अपने बचाव का उपाय सोचना है। जो आपत्ति आने पर घबरा उठते हैं, वह कभी उन पर विजय प्राप्त नहीं कर पाते?" मोती बोला।

तभी सहसा मोती की निगाह घास में बने एक गड्ढे पर गई। "चलो! हम दोनों इसमें छिप जाते हैं।" मोती ने छोटू से कहा।

दोनों तुरंत जाकर गड्ढे में बैठ गए। ऊपर से उन्होंने गड्ढे को घास से ढक लिया, जिससे वे बिलकुल दिखाई न पड़ें।

मीता लोमड़ी वहाँ आई तो चारों ओर देख-देखकर थक गई, पर कहीं भी उसे छोटू और मोती दिखाई नहीं पड़े। वह बड़ी निराश हुई। दुखी मन से वापस लौटने लगी। वह बार-बार अपने को धिक्कारती जा रही थी—"कैसी अभागी हूँ मैं? दो-दो मोटे-ताजे शिकार खो बैठी। एक को भी पकड़ न पाई।"

निराश और खीझ भरे विचार से सदैव शक्ति का ह्रास ही होता है।

मीता का पैर भी चलते-चलते एक गड्ढे में जा फँसा और वह मुँह के बल गिर पड़ी। गिरने से उसके पैर की हड्डी टूट गई। मीता ने उठने की लाख कोशिश की, उसका पैर जमीन पर सीधा रखा ही नहीं जा रहा था।

अब मीता लोमड़ी अपनी सहायता के लिए चिल्लाने लगी—"अरे! जो भी यहाँ पर हो, वह मुझ पर पड़ी विपत्ति में सहायता करे।"

उसकी आवाज छोटू और मोती ने भी सुनी। छोटू बोला—"लगता है मीता लोमड़ी मुसीबत में फँस गई है।"

"मुसीबत में पड़े की सहायता करना हमारा धर्म है। चाहे वह शत्रु हो या मित्र।" मोती बोला।

"चलो! चलकर देखते हैं कि हम क्या सहायता कर सकते हैं।" छोटू ने भी अपना सिर हिलाते हुए कहा।

दोनों ने जाकर देखा तो लोमड़ी पड़ी कराह रही थी। छोटू और मोती को देखते ही बोली—"भाइयो! अब मैं तुम्हें कभी नहीं सताऊँगी। मेरी सहायता करो।"

मोती बोला—"वायदा करो कि आज से तुम हम जैसे छोटे जीवों को नहीं सताओगी।"

"तुम ठीक कहते हो। दीन-दुर्बल प्राणियों को सताना कोई अच्छी बात नहीं।" मीता लोमड़ी बोली।

छोटू और मोती जाकर डॉक्टर को बुला लाए। उसने घास रखकर लोमड़ी के पैर पर पट्टी बाँधी, जिससे वह चलने-फिरने लायक हो जाए।

"धन्यवाद भाई छोटू और मोती। तुमने मुझे शिक्षा दी है कि आपत्ति में पड़े हुए की बैर-भाव भूलकर भी रक्षा करनी चाहिए। तुम आज यदि मेरी सहायता न करते तो मैं न जाने कब तक पड़ी कराहाती रहती। मैं भी आज प्रतिज्ञा करती हूँ कि सदैव दूसरों की सहायता किया करूँगी।" मीता लोमड़ी ने कहा।

"यदि तुम्हारा मन बदल गया तो हमारी सेवा-सहायता सार्थक हो गई।" मोती बोला। मोती और छोटू दोनों खुशी-खुशी अपने घर वापस आ गए। स्वार्थी मीता लोमड़ी की भावनाओं को बदलने में उन्हें सफलता मिली है, यह सोच-सोचकर वे रास्ते भर प्रसन्न होते गए।

छोटू खरगोश बोला—"देखा! तुमने मोती भाई। किसी को डाँट-डपटकर नहीं, वरन स्नेह और सद्भावना से बदल सकते हैं।"

मोती कहने लगा—"हाँ! तुम ठीक कहते हो, प्यार और भाईचारे से सभी कुछ संभव है।"



परिश्रमी सदा सुखी

दत्ता नाम की एक मधुमक्खी बड़ी आलसी थी। उसकी सारी सहेलियाँ सुबह ही काम पर निकल जातीं, पर वह देर तक सोती रहती। दिन में भी पड़ी अलसाती रहती। कुछ भी काम करना उसे बुरा लगता था। अन्य मधुमक्खियाँ मेहनत करके पराग आदि भी इकट्ठा करतीं, शहद बनातीं, दत्ता उन्हें पड़े-पड़े खाती रहती।

दत्ता का यह निकम्मापन अन्य मधुमक्खियों को पसंद न था। उन्होंने एक दिन सभा की। सभी ने एकमत से समर्थन किया कि दत्ता का बहिष्कार कर देना चाहिए। उसे हमारे साथ रहने का कोई अधिकार नहीं है, वह जहाँ चाहे चली जाए।

रानी मक्खी ने दत्ता को यह आदेश सुना दिया कि या तो वह काम करे या फिर अलग जाकर रहे। आलसी दत्ता ने काम करने

की अपेक्षा अलग रहना अधिक उचित समझा। वह उसी दिन छत्ता छोड़कर चली गई।

नया छत्ता बनाना दत्ता जैसी आलसी के लिए संभव न था। वह बरगद के एक पेड़ पर उड़कर बैठ गई। घूम-फिरकर उसने अपने रहने की जगह तलाश की और अंत में एक कोटर में जाकर रहने लगी।

उस पेड़ की कोटर में दत्ता सारे दिन आलस में पड़ी रहती। जब उसे बहुत तेज भूख लगती तो इधर-उधर जाकर थोड़ा-बहुत खाना तलाश लेती। अकसर आलस्य के कारण वह भूखी भी रहने लगी। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में वह बहुत दुबली हो गई।

बरगद के पेड़ पर शालिनी नाम की एक चिड़िया भी रहा करती थी। वह प्रायः दत्ता को समझाती—"बहन! कुछ काम भी किया करो। आलस में समय गँवाने से क्या लाभ है? आलसी जीवन में कुछ भी प्राप्त करने में सफल नहीं होता। आलस्य से बढ़कर और कोई शत्रु नहीं है। इसके रहते हम जीते जी मर जाते हैं।"

शालिनी की बातों का दत्ता पर कोई प्रभाव न पड़ता। वह उसकी बातें सुनती और मुँह फिरा लेती। हारकर शालिनी ने उससे कुछ कहना ही बंद कर दिया।

एक बार की बात है। एक मकड़ी घूमती हुई बरगद के पेड़ पर चढ़ गई। उसे भी अपने रहने की जगह की तलाश थी। दत्ता जिस कोटर में रहती थी, वह उसे बहुत पसंद आया। मकड़ी ने उस कोटर में अपना जाला पूर लिया।

आश्चर्य की बात कि दो दिन तक दत्ता को यह पता ही नहीं चला कि वह कैद हो चुकी है। चौथे दिन सुबह-सुबह उसे भूख लगी। अब खाने की तलाश में जाना चाहिए—उसने सोचा, पर यह क्या? उसके निकलने के सारे रास्ते बंद थे। सूरज की रोशनी में मकड़ी का जाला चाँदी सा चमक रहा था।

दत्ता यह देखकर घबरा उठी। उसने मन ही मन में सोचा कि अब तो मैं निश्चित ही मर जाऊँगी। मकड़ी मुझे भी किसी दिन खा जाएगी। तभी दत्ता की निगाह डाल पर बैठी शालिनी चिड़िया पर पड़ी। दत्ता वहीं से चिल्लाई—"शालिनी बहन! मेरी सहायता करो।"

शालिनी ने दत्ता की आवाज पहचानते हुए कहा—"पर तुम बोल कहा से रही हो?"

"कोटर से ही बोल रही हूँ।" दत्ता चिल्लाई।

"पर वहाँ तो दो-तीन दिन से एक मकड़ी है। मैंने सोचा कि तुम कोटर छोड़कर चली गई होगी।" शालिनी बोली।

"नहीं मैं यहीं हूँ। मुझे यहाँ से किसी भी तरह से निकालो।" दत्ता घबराकर बोली।

"ठहरो, मैं तुम्हें बचाने का कोई उपाय सोचती हूँ।" शालिनी बोली। थोड़ी देर तक वह कुछ सोचती रही। फिर फुर्र से उड़ी, अपनी चोंच में एक लंबी सी टहनी तोड़ लाई। उस टहनी से शालिनी ने मकड़ी का जाला तोड़ डाला। दत्ता जल्दी से अंदर से निकल आई। जाली टूटने से उसमें कैदी, कुछ मक्खी-मच्छर और अन्य कीड़े-मकोड़े भी भाग निकले। सभी शालिनी को धन्यवाद दे रहे थे।

दत्ता को शालिनी अपने घोंसले में ले गई। वहाँ उसे खाना खिलाया, वह तीन दिन से भूखी जो थी।

इसके बाद शालिनी कहने लगी—"दत्ता बहन! तुम बुरा न मानना। अपने आलस के कारण ही तुम मौत के मुँह में जा फँसी थीं। आलस करने से क्या लाभ है? जीवन अधिक से अधिक काम करने के लिए मिला है। सोचो तो, तुम आलसी न होतीं तो क्यों तुम्हें तुम्हारी सहेलियाँ निकालतीं? क्यों तुम अकेली पड़ी रहतीं? आलस छोड़ो, अपनी सहेलियों के साथ मिल-जुलकर काम करते हुए रहो। इसी में सुख-सुरक्षा है।"

"तुम ठीक कहती हो बहन! आज से मैं अपना आलस बिलकुल छोड़ दूँगी।" दत्ता बोली।

वह अपनी सहेलियों के पास गई। उनसे जाकर क्षमा माँगी। दत्ता बोली—"बहन! मुझे अपने पास रख लो। अब मैं मन लगाकर काम करूँगी।"

"हमें प्रसन्नता है दत्ता! तुम सही रास्ते पर आ गई हो। तुम्हारा स्वागत है, सभी के साथ मिल-जुलकर रहो। मधुमक्खियों की रानी बोली।"

अब दत्ता सारे दिन काम करती है। किसी को उससे कोई शिकायत नहीं रही है। दत्ता को स्वयं आश्चर्य होता है कि पहले वह बिना काम किए आलसी और निकम्मी कैसे पड़ी रहती थी? उसकी समझ में अब यह बात अच्छी तरह आ गई है कि परिश्रम करने में ही सुख है।



मित्रता की कला

यमुना नदी के किनारे केशू नाम का एक कछुआ रहता था। वह सदा अकेले-अकेले रहता था। पूरी नदी में उसका कोई मित्र नहीं था। केशू इस कारण बहुत उदास भी रहता था। आखिर कभी बातचीत करने को, मन की बात कहने को कोई तो चाहिए ही।

केशू के मित्र न बनने का कारण उसका स्वभाव था। वह हमेशा मुँह लटकाए उदास-उदास सा बैठा रहता था। बोलता बहुत कम था। बोलता था तो बड़ी कर्कश वाणी में। दूसरों की कभी वह कोई सहायता नहीं करता था, उनसे कोई मतलब नहीं रखना चाहता था। निराश होने वाले के पास कौन आता? कठोर बोलने वाले से कौन बातें करना पसंद करता? दूसरे की सहायता न करने वाले को

कौन चाहता? यही कारण था कि केशू के पड़ोसी कछुए उससे किसी प्रकार का संबंध नहीं रखते थे। एक बुरे कछुए के रूप में वह पूरी यमुना नदी में कुख्यात था। थोड़ी सी बुराई भी बहुत बड़ी होकर फैलती है। केशू की थोड़ी बुराइयाँ भी उसके पड़ोसियों द्वारा बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताई जाती थीं। अनेक पड़ोसी उससे डरते भी थे।

केशू एक दिन उदास सा नदी के किनारे बालू पर लेटा था। वह समझ नहीं पा रहा था कि कैसे रहे? सुबह से शाम तक अकेले रहना, न कोई साथ को और न कोई बात करने को।

तभी केशू ने देखा कि नदी के किनारे एक हिरण आकर बैठा है। चलो इसी से बात करता हूँ। केशू ने मन ही मन सोचा।

तब तक हिरण बोल पड़ा—"नमस्ते दादा! उदास-उदास से कैसे लेटे हो?"

"नमस्ते भाई ! कुछ नहीं, ऐसे ही जरा सो रहा था।" केशू बोला।

हिरण ने बताया कि उसका नाम सुंदर है। वह पास के जंगल में रहता है। आज घूमते-घूमते इधर आ गया हूँ।

जल्दी ही सुंदर और केशू पक्के मित्र बन गए। दोनों नदी किनारे बैठकर घंटों बात करते रहते। नदी के और कछुओं को उन दोनों की मित्रता देखकर बड़ा अचंभा होता। जरूर इसमें केशू का कुछ स्वार्थ होगा। फिर वे सोचने लगते।

एक दिन केशू ने अपने मित्र सुंदर के सामने यह समस्या रखी कि वह सारी नदी में बदनाम है और उसका कोई साथी नहीं है। सुंदर ने बड़े ध्यान से उसकी बात सुनी। फिर बोला—"दोस्त! बदनामी तो बड़ी जल्दी हो जाती है, उसे हटाने के लिए तुम्हें बड़ा प्रयास करना पड़ेगा। तुम सदैव अच्छे कार्य करो। दूसरों की सहायता करो उनसे अच्छा व्यवहार करो। तुम्हारी अच्छाई एक न एक दिन बदनामी को हटा देगी।"

"ठीक है! मैं पूरी कोशिश करूँगा।" केशू ने लंबी सांस भरते हुए कहा। उसे दुःख हो रहा था कि यदि उसने पहले ही ऐसा किया होता तो आज उसके भी ढेर सारे मित्र होते। सभी उसकी प्रशंसा करते।

उस दिन से ही केशू अपने स्वभाव को पूरी तरह से बदलने में जुट गया।

एक दिन की बात थी। नदी के किनारे बरगद के पेड़ पर रहने वाला एक शैतान बंदर का बच्चा एक पेड़ की डाल पर से दूसरे पेड़ की डाल पर कूद रहा था। सहसा वह पानी में छपाक से गिर पड़ा। बंदर का बच्चा देर तक पानी में डूबता रहा। उसे नदी में तैरता हुआ लकड़ी का एक पट्टा मिल गया। वह जल्दी से उस पर चढ़ गया और लकड़ी के तख्ते के सहारे कुछ देर तक नदी में तैरता रहा।

उधर से अचानक तैरता हुआ केशू कछुआ जा रहा था। बंदर का बच्चा उसे देखकर पुकारने लगा—"दादा! मुझे बचाओ, मुझे बचाओ।"

पहले तो ऐसी स्थिति में केशू कछुआ मुँह फिराकर चल देता था, पर अब तो वह बदल चुका था। उसने तुरंत बंदर के बच्चे के पास जाकर उसे अपनी पीठ पर बिठा लिया।

बंदर के बच्चे ने केशू कछुए को धन्यवाद देते हुए कहा—"ओह दादा! आज तुम न आते तो मैं डूब ही जाता।"

नदी किनारे बैठे बंदरों ने देखा कि एक बंदर का बच्चा केशू कछुए की पीठ पर बैठा है। वे आपस में कहने लगे—"यह केशू कछुआ तो बड़ा ही दुष्ट है। यह इस बच्चे को मार डालेगा। आज तो इसकी जान गई ही समझो।"

पर उन सभी के आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने देखा कि केशू बच्चे को लेकर किनारे की ओर ही बढ़ा चला आ रहा है।

"आज केशू काका के कारण ही मेरे प्राण बचे हैं। नहीं तो मैं कबका नदी में डूब गया होता।" किनारे पर आकर केशू की पीठ से उतरता हुआ बंदर का बच्चा बोला।

सभी बंदरों ने केशू को बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। एक बूढ़ा बंदर बोला—"तुम कितने उपकारी हो केशू? तुम्हारे पड़ोसी कछुवे वैसे ही तुम्हारी बुराई करते हैं। हो सकता है कि वे तुमसे कोई बैर-भाव रखते हों।"

"नहीं-नहीं! अब वे मेरी बुराई नहीं करेंगे। अब मैं बदल गया हूँ।" केशू ने उत्तर दिया।

सभी बंदरों ने बच्चा बचाने की खुशी में केशू को बढ़िया सी दावत दी। उसे खूब सारे उपहार देकर विदा किया और कहने लगे—"केशू हम सभी तुम्हारे मित्र हैं। तुम हमारे पास प्रतिदिन आया करो। कभी किसी काम की जरूरत हो तो हमसे कहना।"

केशू आज बड़ा प्रसन्न था। दूसरों का उपकार करने में जिस सच्ची प्रसन्नता का अनुभव होता है, उसे आज उसने प्राप्त कर लिया था।

केशू ने बंदर के बच्चे की जान बचाई है—यह खबर उसके पड़ोसी कछुओं तक भी पहुँच गई थी। वे कई दिनों से देख रहे थे कि केशू का व्यवहार अब विनम्र होता जा रहा है। इस समाचार से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे आपस में कहने लगे—"केशू अब पहले जैसा नहीं रहा। वह बहुत अच्छा बन गया है।"

केशू के आने पर सभी कछुओं ने उसका स्वागत किया। सभी ने कहा कि तुमने आज बड़ा अच्छा काम किया है।

केशू ने बंदरों से मिले उपहार सभी कछुओं को बाँट दिए।

अब कछुओं के मन में केशू के प्रति पहले जैसा भाव नहीं रहा था। वे सभी उसके साथ बात करते थे, मिल-जुलकर रहते थे। केशू के बहुत सारे मित्र बन गए। सभी उसकी प्रशंसा करते।

अब केशू बिलकुल भी सुस्त और अकेला नहीं रहता है। कभी कछुए, कभी बंदर, कोई न कोई उसके पास बैठा ही रहता है। केशू को बहुत अच्छा लगता है। मित्र कैसे बनते हैं? जीवन कैसे जीना चाहिए? यह बात उसकी समझ में आ गई है।



स्वावलंबन

नंदा लोमड़ी को अंगूर बड़े पसंद थे। वह जहाँ भी हरे-भरे अंगूरों के गुच्छे देखती, उसके मुँह में पानी भर आता, पर अंगूर उसे मुश्किल से ही खाने को मिलते। लंबू हाथी, पप्पू खरगोश, चंचल गिलहरी इनके यहाँ अंगूर की बेलें थीं। वे सभी बड़ी मेहनत से उन्हें उगाते थे। नंदा लोमड़ी सभी से अंगूर माँगती, पर एक-दो देकर सभी मना कर देते। चंचल गिलहरी ने तो साफ कह दिया— "मौसी! तुम्हें रोज-रोज अंगूर खाने हैं तो अपने आप मेहनत करो। अपने परिश्रम से उगाकर खाओ।"

चंचल गिलहरी की यह बात नंदा को लग गई। वह सोचने लगी कि यह ठीक ही कहती है। रोज-रोज किसी से माँगना उचित नहीं है। मैं भी मेहनत कर सकती हूँ। फिर भीख क्यों माँगू?

और फिर नंदा लोमड़ी ने भी अंगूर की बेलें लगाईं। वह सुबह-शाम उनमें पानी देती, खाद देती। सारे दिन बैठी वह उनकी देख-भाल करती। धीरे-धीरे अंगूरों की बेलें बढ़ती गईं और उन पर बड़े प्यारे-प्यारे गुच्छे लटकने लगे। अपनी मेहनत सफल होते देख नंदा फूली न समाती।

धीरे-धीरे अंगूर पकने लगे। नंदा ने एक गुच्छा चखकर देखा। बड़े ही मीठे अंगूर थे। कुछ गुच्छे नंदा ने अपने पड़ोसियों को भी बाँटे सभी ने बड़े स्वाद से उन्हें खाया।

चूँ-चूँ चूहे और पप्पू खरगोश को अंगूर बहुत अच्छे लगे। वे जब भी नंदा लोमड़ी के खेत के आगे से निकलते, ललचाई निगाहों से अंगूरों को देखते जाते। उनकी इच्छा अंगूर खाने की होती, पर नंदा लोमड़ी वहाँ हमेशा देख-भाल करती थी, इसलिए खेत के अंदर जाने की उनकी हिम्मत न पड़ती। माँगने पर नंदा कहीं मना न कर दे, इस कारण वे उससे अंगूर माँगते भी नहीं थे।

चूँ-चूँ चूहा और पप्पू खरगोश दोनों इसी ताक में रहते थे कि कब नंदा लोमड़ी जरा खेत से हटे और कब वे अंगूरों की दावत उड़ाएँ। वे उसके खेत के कई-कई चक्कर लगाते। उनको बार-बार चक्कर लगाते देखकर नंदा भी समझ गई थी कि ये दोनों ही चोरी करना चाहते हैं।

एक दिन चूँ-चूँ चूहे और पप्पू खरगोश ने देखा कि नंदा खेत में नहीं है। बस फिर क्या था, वे दोनों चुपचाप खेत में घुस गए। दोनों ने जी भरकर खूब अंगूर तोड़े। पेट भरकर उन्हें खाया और कुछ ले चलने के लिए बाँध लिए। दोनों चलने ही वाले थे कि तभी एकाएक पीछे से नंदा ने आकर उन्हें पकड़ लिया।

अब चूँ-चूँ चूहा और पप्पू खरगोश दोनों ही नंदा की गिरफ्त में थे। वे बार-बार गिड़गिड़ा रहे थे—"मौसी! हमें माफ कर दो। अब हम तुमसे बिना पूछे अंगूर नहीं तोड़ेंगे।"

नंदा बोली—"तुम जानते हो कि बिना पूछे दूसरे की चीज लेना चोरी कही जाती है। तुमने चोरी की है, इसका दंड तो तुम्हें अवश्य मिलेगा ही। तुम मुझसे माँगकर अंगूर लेते तो कुछ बात नहीं थी।"

पप्पू खरगोश को नंदा ने एक बाल्टी पकड़ाई और बोली—"जाओ! और बाहर कुएँ से दस बाल्टी पानी खींचकर लाओ। यही तुम्हारा दंड है।"

फिर चूँ-चूँ चूहे से बोलीं—"चलो तुम पैने दाँतों से इन बेलों की कटाई करो। तभी तुम्हें छुटकारा मिल सकता है।"

लाचार होकर चूँ-चूँ चूहे और पप्पू खरगोश दोनों को काम करना पड़ा। कुएँ से पानी खींचते-खींचते पप्पू की सारी पीठ दुःख गई। उसने इतनी कड़ी मेहनत कभी न की थी। उधर बेलों की कटाई करते-करते चूँ-चूँ चूहे के सारे दाँत भी थक गए, पर वह छूट भी कैसे सकता था?

पूरे दो घंटे की कड़ी मेहनत करने के बाद नंदा ने उन्हें छुटकारा दिया। बोली—"आज से तुम दोनों यह बात अच्छी तरह समझ लो कि जो चीज तुम्हें चाहिए, उसे अपनी मेहनत से प्राप्त करो। अपने परिश्रम से मिलने वाली रूखी-सूखी चीज भी अच्छी है। पड़ोसी की चीज पर कभी ललचाओ मत। चोरी करके किसी चीज को लेने की कोशिश न करो। चोरी का दंड कभी न कभी तो मिलता ही है।"

"अब हम चोरी नहीं करेंगे।" चूँ-चूँ चूहे और पप्पू खरगोश दोनों ने अपने-अपने कान पकड़कर कहा।

उनकी इस बात पर नंदा लोमड़ी बड़ी प्रसन्न हुई। फिर दोनों को उनके तोड़े हुए अंगूर देते हुए बोली—"तुम्हारी इस प्रतिज्ञा की खुशी में मैं तुम्हें यह उपहार देती हूँ। कुछ दिन पहले मैं भी मुफ्त का माल खाने की सोचती थी, पर धीरे-धीरे मुझे समझ आ गई। मैंने सोचा कि दूसरों से माँगने की अपेक्षा खुद मेहनत करके खाया जाए। इससे स्वाभिमान भी बना रहेगा, दूसरों के सामने हाथ भी नहीं फैलाना पड़ेगा और मनचाही चीज भी मिलेगी। आज तुम मेरी मेहनत का फल देख ही रहे हो।"

"तुम ठीक कह रही हो मौसी! अब हम भी तुम्हारी तरह मेहनत करेंगे और अंगूर उगाएँगे। चूँ-चूँ चूहे, पप्पू खरगोश ने कहा और खुशी-खुशी अपने घर चले गए।"



सुंदर की उदारता

पीपल के पेड़ के नीचे सोनू कुत्ता चुपचाप बैठा था। उसे बड़ी तेज भूख लग रही थी। कहीं से खाना मिल जाए यही सोचता हुआ वह बैठा था।

तभी सुंदर कौआ उड़ता हुआ पीपल के पेड़ पर आया। उसकी चोंच में पूरी एक रोटी थी। रोटी देखकर सोनू की भूख और भड़क उठी। सुंदर से किसी भी तरह से रोटी छीननी चाहिए, उसने मन ही मन सोचा।

सोनू बोला—"सुंदर भाई! मुझे पता ही न था कि तुम इतना अच्छा गाते हो! आज तो भरी सभा में वनराज सिंह ने तुम्हारे गाने की प्रशंसा की है। एक गाना तो सुनाओ।"

सुंदर और दिनों की भाँति अपनी प्रशंसा सुनकर अभिमान से फूला नहीं, क्योंकि कई बार ऐसा हो चुका था कि सोनू कुत्ता, चंटू लोमड़ी, लाली मुर्गी उसकी चापलूसी करके चालाकी से रोटी का टुकड़ा लेकर भाग गए थे। उनकी चालाकी अब सुंदर कौआ अच्छी तरह समझ गया था। इसलिए वह सतर्क हो गया था। रोटी का टुकड़ा बड़ी सावधानी से उसने अपने पंजे में दबाया। फिर बोला—"भाई! भूखे पेट मैं तुम्हें अच्छा गाना नहीं सुना पाऊँगा। पहले रोटी खा लूँ, तब गाना गाऊँगा।"

सुंदर कौआ आराम से कुतर-कुतरकर रोटी खाता रहा। सोनू पेड़ के नीचे बैठा ललचाई निगाहों से उसे देखता रहा। सोनू बहुत भूखा था, रोटी देखकर उसके मुँह से लार निकलने लगी।

सुंदर के मन में आया कि एक गस्सा वह सोनू को भी दे दे, पर सोनू कई बार उसे धोखा देकर पूरी की पूरी रोटी छीनकर

भाग चुका है। इसलिए इसे सबक मिलना ही चाहिए। सुंदर ने अपने मन में कहा।

रोटी खा चुकने के बाद सुंदर पूरी आवाज से चिल्लाया— "काँव-काँव।" सोनू कुछ देर तो सुनता रहा फिर चिल्लाया— "बंद करो अपना यह बेसुरा राग।"

सुंदर बोला-"तुमने ही तो कहा था गाना सुनाने को।"

"पर मैं तो भूखा हूँ। भूखे पेट गाना सुनना भी अच्छा नहीं लगता।" सोनू ने कहा।

"तो तुम खाने की तलाश क्यों नहीं करते?" सुंदर ने कहा।

सोनू सकुचा गया। उससे कुछ उत्तर देते न बना। वह तो अधिकतर दूसरों की रोटी छीन-झपटकर ही खाता था।

"सोनू दादा! अपनी मेहनत से कमाकर खाओ।" सुंदर बड़े गर्व से बोला।

"पर भाई! आज तो मुझे खाना कहीं भी नहीं मिला।" सोनू झूठ-मूठ बहाना बनाने लगा।

मैं बताता हूँ तुम्हें। यहाँ से पूर्व की ओर चले जाओ। वहाँ शिवजी का एक मंदिर है। आज सुबह-सुबह बहुत से यात्री वहाँ आए, उन्होंने वहाँ खाना बनाकर खाया था। उनकी बहुत सी भोजन की जूठन वहाँ अभी पड़ी हुई है। मैं भी रोटी वहीं से लाया था। सुंदर बोला।

सोनू को सहसा विश्वास न हुआ। "तुम जरा वहाँ जाकर, कष्ट उठाकर देखो तो सही।" सुंदर बोला।

लाचार, खाने की आशा में सोनू उसी ओर चल पड़ा, पर वह बहुत डरते-डरते जा रहा था। वह सोच रहा था कि कहीं सुंदर उसके विरुद्ध कोई षड्यंत्र न कर रहा हो। उससे बदला न ले रहा हो। तभी उसने भर्र-भर्र की आवाज सुनी। जरूर ऐसा ही है। उसने सोचा और तेजी से उलटा वापस लौटने लगा।

कुछ दूर आकर सोनू रुका। सहसा उसने काँव-काँव की आवाज सुनी। सिर उठाकर ऊपर देखा तो सामने सुंदर कौआ पेड़ पर बैठा था।

"तुम मुझे धोखा दे रहे हो सुंदर। पेड़ों के पीछे शिकारी बैठे हैं। तुम मुझे फँसाना चाहते हो।" सोनू बोला।

सोनू की बात सुनकर सुंदर खूब हँसा और फिर बोला—"मैं तुम्हें धोखा नहीं दे रहा। तेज हवा से पेड़ों के पत्ते भर्र-भर्र की आवाज कर रहे हैं। इसीलिए तुम्हें वहाँ शिकारी होने का भ्रम हो गया है। तुम सदैव मुझे धोखा देते रहे हो, इसलिए तुम सोच रहे हो कि तुम्हें धोखा दे रहा हूँ। जो जैसा होता है, वह दूसरों के प्रति भी वैसा ही सोचता है। मैं बुरे के साथ बुरा नहीं किया करता। मैं तो सदैव सबकी अच्छाई की बात ही सोचा करता हूँ।"

सोनू यह सुनकर बड़ा लज्जित हुआ। सुंदर की बात ठीक ही थी।

फिर सोनू सुंदर के साथ शिवजी के मंदिर के पास गया। वहाँ बहुत सारा खाना पड़ा था। देख लो! मैंने झूठ तो नहीं कहा। सुंदर बोला।

सोनू तेजी से खाने पर झपट पड़ा। खूब भर पेट उसने खाना खाया। सुंदर काँव-काँव करता चारों ओर घूम रहा था।

"सुंदर भाई! अज तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। अब मैं किसी को धोखा नहीं दूँगा। अपनी मेहनत से कमाकर खाऊँगा। बेकार का डर छोड़ दूँगा।" सोनू कहने लगा।

"चलो! तुम सही रास्ते पर तो आए।" सुंदर ने कहा और काँव-काँव करते हुए उड़ चला।



घमंडी कजरी

यों उस घर में अनेक पशु-पक्षी पले हुए थे। पिंजरे में बैठा हरियल तोता हर समय राम-राम कहता रहता था। सोनू कुत्ता बड़ी सजगता से घर की चौकीदारी करता था। गंभीर गौरी गाय सबको समझाया करती थी। लड़ाई होने पर वही न्याय करती थी। सफेद कबूतरों का जोड़ा बड़ी शान से इठलाता सारे घर में घूमा करता था, पर मालिक की न जाने क्यों सबसे प्यारी थी, तो कजरी बिल्ली। उसकी दौड़ सीधी मालिक की गोद थी। काले-सफेद गुदगुदे रोंये वाली यह कजरी देखने में बहुत सुंदर थी। मालिक उस पर प्यार से हाथ फिराते, पुचकारते, गुदगुदाते और खेल खिलाते। इन सब बातों से कजरी को घमंड होने लगा।

वह सारे दिन सभी से अपनी प्रशंसा करती रहती। सुबह-सुबह जब हरियल तोता पूरी तन्मयता से राम-नाम का गान कर रहा होता तो कजरी वहाँ पहुँच जाती। वह पूछती—"अरे तोते! क्या मालिक कभी तुझसे भी बोलते हैं?"

"हाँ! मालिक रोज सुबह-शाम मेरे पास आते हैं।" तोता कहता।

"फिर?"

फिर क्या, मुझसे कहते हैं—"मिट्ठू! कहो राम-राम।" तोता कहता।

बस इतना ही कजरी मुँह बिचकाते हुए कहती—"मुझे तो सदैव मालिक गोद में बिठाकर प्यार करते हैं।" और तेजी से वहाँ से दौड़ जाती।

कभी कजरी गौरी गाय के पास जाती और पूछती—"अरी गौरी! क्या कभी मालिक तुम पर प्यार से हाथ भी फिराते हैं?"

"हाँ-हाँ रोज ही तो फिराते हैं।" गौरी गर्व से अपनी गरदन उठाकर, बड़ी-बड़ी काली कजरारी आँखों को ऊपर करके यही उत्तर देती।

"पर क्या वे तुझे गोद में भी बिठाते हैं?" कजरी फिर पूछती।

गौरी को मन ही मन हँसी आने लगती। वह इस मूर्खता भरे प्रश्न का कोई उत्तर न देती। अपनी गरदन एक ओर फिरा लेती। गौरी जानती थी कि कजरी बहुत घमंडी होती जा रही है। घमंडी के मुँह भी क्या लगा जाए?

कजरी यही प्रश्न सफेद कबूतरों के जोड़े और सोनू कुत्ते से भी करती, फिर वह उनको नीचा दिखाने की कोशिश करती। सोनू कुत्ते से तो कजरी की बिलकुल न बनती थी। वह हरदम उसको छेड़ा ही करती, पर सोनू कुत्ता भी बड़ा गंभीर था। कजरी सामने भी आती, उसे चिढ़ाती भी रहती तो भी एक ओर मुँह करके बैठा रहता। कजरी की बात को अनसुना कर देता।

घर के बाड़े में सारे जानवर बैठे-बैठे बतियाते रहते, पर कजरी उनके बीच कभी न बैठती। वह ऐसा करना अपना अपमान समझती थी। वह अपने को उन सबसे अच्छा और बड़ा समझती थी। वह तो बस रात को सोने को ही उनके बीच में आती थी।

एक दिन कजरी जब सुबह-सुबह उठी तो उसे चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखाई देने लगा। उसकी आँखें दुःख रही थीं और किरकिरा रही थीं। उसने जोर से पंजों से आँखों को मला, पर आँखें और भी दरद करने लगीं और उनसे पानी निकलने लगा। कजरी म्याऊँ-म्याऊँ करके चीखने लगी।

गौरी गाय, सफेद कबूतर, सोनू कुत्ता सभी की आँखें खुल गईं। वे कजरी के चारों ओर घिर आए। सभी पूछने लगे—"कजरी क्या हो गया?"

पर कजरी "कुछ नहीं कहकर मुँह फिराकर धीरे-धीरे बाड़े से निकल गई। कजरी के इस व्यवहार से सभी जानवर अपना सा मुँह लेकर रह गए।"

कजरी सोच रही थी—"यह बेवकूफ जानवर मेरी क्या कोई सहायता करेंगे? मालिक बुद्धिमान है, उन्हीं को जाकर मैं अपनी आँखें दिखाऊँगी।"

म्याऊँ-म्याऊँ, म्याऊँ-म्याऊँ करती हुई, गंध सूँघती हुई कजरी मालिक के पास गई। उन्होंने उसे पुचकारा, कजरी फिर से म्याऊँ-म्याऊँ करने लगी। मालिक ने पूछा—"क्या बात है कजरी? क्यों चीख रही हो?" "कजरी ने उन्हें लाख समझाने की कोशिश की कि आँखों में तकलीफ हो गई है, पर मालिक कजरी बिल्ली की भाषा न समझ सकते थे और न समझे।"

हारकर, मन मसोसकर फिर कजरी को जानवरों के बाड़े में ही जाना पड़ा। सोनू कुत्ते ने उस घमंडी बिल्ली को देखकर अपना मुँह फिरा लिया। सफेद कबूतर उसे देखकर फुर्र से उड़ गया।

कजरी जानती थी कि गौरी गाय सबसे अधिक उदार है। वह जरूर उसकी सहायता करेगी। कजरी लड़खड़ाती सी उसके पास पहुँची और बोली—"काकी-काकी ! मुझे बचाओ, नहीं तो मैं मर जाऊँगी।"

"क्या बात है री कजरी?" गौरी ने पूछा।

"काकी देखो तो मेरी आँखों में क्या हो गया है? कुछ भी तो दिखाई नहीं दे रहा।"

गौरी ने ध्यान से देखा। कजरी की आँखों में घास के तिनके चिपके हुए थे। गौरी ने जीभ से तुरंत चाट-चाटकर उन्हें निकाल दिया। सारे तिनके निकल जाने पर कजरी का दरद भी दूर हो गया।

उसकी आँखें खुलने लगीं और दिन का प्रकाश उसे साफ भी दिखाई देने लगा।

कजरी को अब बड़ा ही पश्चात्ताप होने लगा। वह सोचने लगी—"देखो! मैं व्यर्थ ही अभिमान करती थी। सभी से दूर रहा करती थी। दु:ख-मुसीबत में हम सब ही एकदूसरे के काम आते हैं। हम सभी को मिल-जुलकर रहना चाहिए।"

अब कजरी बिल्ली सभी से अच्छा व्यवहार करती है। सभी के साथ मिल-जुलकर रहती है। पहले की तरह घमंड भरी बातें भी नहीं किया करती।



पोखर का जादू

दशहरे की छुट्टियों में मुरारी अपने गाँव खतौली आया। पूरे दो महीने बाद आया था वह। छुट्टियाँ कैसे बिताएगा? यही सोचते-सोचते वह अपने घर जा पहुँचा। दरवाजे से ही पकवानों की सौंधी-सौंधी गंध उसकी नाक में घुसने लगी। वह सोच रहा था कि आज तो माँ ने उसके स्वागत की जोरदार तैयारियाँ की होंगी। वह अपने पास बिठाकर खूब सारी चीजें खिलाएँगी।

माँ ने मुरारी का कुशल समाचार पूछा। एक प्लेट में भरकर नाश्ता मुरारी को देते हुए बोलीं—"बेटा! जरूरत हो तो अरुणा से और कुछ माँग लेना।"

"पर तुम जा कहाँ रही हो माँ?" माँ के हाथ में लगे थाल के पकवानों और फलों पर दृष्टि डालते हुए मुरारी ने उत्सुकता से पूछा।

"बेटा! एक बहुत बड़े साधु इस गाँव में आए हैं। बरगद के पेड़ के नीचे बैठे तपस्या करते रहते हैं। हनुमानजी के बड़े ही भारी भक्त हैं वे। भूत-प्रेत भी उन्होंने सिद्ध कर रखे हैं।" माँ भाव-विभोर हुई कहती चली जा रही थीं।

मुरारी कुछ कहने जा रहा था, पर कहते-कहते रुक गया। माँ की आस्था को वह एकदम चोट नहीं पहुँचाना चाहता था। उसके मन में आया कि पीछे जाती हुई माँ को पुकारकर बुला ले, पर न जाने क्या सोचकर वह चुप रह गया।

मुरारी का मन खाने में भी न लगा। पकवानों की सौंधी गंध भी उसे आकर्षित न कर सकी। अरुणा कहती ही रह गई— "भइया कुछ और ले लो।" पर मुरारी ने प्लेट में कुछ नहीं रखने दिया। जल्दी-जल्दी खा-पीकर वह उठा। उसने अरुणा से पूछकर पता लगाया कि साधु बाबा ने कहाँ डेरा डाला है? फिर वह तेजी से घर से निकल पड़ा।

शीघ्र ही मुरारी हनुमानजी के मंदिर के पास पहुँचा। उसने दूर से ही देख लिया कि बरगद के पेड़ के नीचे अथाह भीड़ है। लगता था मानो सारा गाँव ही वहाँ जुट गया हो। मुरारी चुपचाप एक ओर जाके खड़ा हो गया। फिर वह बड़े ध्यान से साधु की बातें सुनने लगा।

उसने देखा कि एक के बाद एक व्यक्ति साधु के पास आता जा रहा था। वह बड़ी श्रद्धा से साधु के पैरों में सिर झुकाता। फिर अपनी माँग उसके सामने रखता। एक कहता—"महाराज! मेरी पत्नी बीमार है, वह ठीक हो जाए।" दूसरा कहता—"महाराज! मेरी फसल खूब अच्छी हो।" तीसरा कहता—"मेरा घर पक्का बन जाए।" चौथा कहता—"मेरी लड़की का विवाह हो जाए।" इस प्रकार एक के बाद एक ग्रामीण साधु के पास आते जा रहे थे। वे बड़े ही गिड़गिड़ाकर अपनी बात कह रहे थे।

मुरारी ने देखा कि साधु बड़े ध्यान से अपनी बड़ी-बड़ी लाल-लाल आँखों को खोलकर बात सुनता। फिर वह आँखें बंद कर लेता। मुँह से कुछ मंत्र बोलता। एक पल को मानो समाधि सी लगा ली हो। फिर आँखें खोलकर एक चुटकी राख अपने कमंडल से निकालकर अपने पास वाली पोखर में डाल देता। पोखर से यदि आग की लपट निकलती तो इसका मतलब होता कि भूत प्रसन्न है

और उस व्यक्ति की मनोकामना पूरी होगी। वह व्यक्ति बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक साधु को अपनी शक्ति के अनुसार भेंट चढ़ाकर वापस आ जाता। परंतु जब पोखर से आग की लपटें नहीं निकलती थीं तो इसका मतलब होता कि भूत खुश नहीं है। उसे प्रसन्न करने को भेंट चढ़ानी होगी। तब कोई धन चढ़ाता तो कोई जेवर। मुरारी ने पाया कि महँगी चीजों से भूत खुश हो जाता था, क्योंकि चढ़ावे में आने के बाद जब साधु पोखर में राख डालता था तो आग की लपटें निकलने लगती थीं।

सहसा ही मुरारी के मस्तिष्क में एक विचार कौंधने लगा। वह तुरंत भीड़ को चीरता हुआ बाहर आ गया और घर की ओर बढ़ने लगा। दूर से साधु की जय-जयकार की ध्वनि काफी देर तक उसके कानों में आती रही।

एक-दो दिन में मुरारी के साथियों ने सारे गाँव में जोर-शोर से यह चर्चा फैला दी कि मुरारी ने भी पोखर वाले भूत को वश में कर रखा है। एक दिन जब शाम को साधु के आस-पास खूब भीड़ जुड़ी थी। मुरारी और उसके साथी भी वहाँ पहुँच गए। रामू ने भीड़ में घोषणा की कि अब सबकी मनोकामनाएँ मुरारी बिना कुछ चढ़ावे और मनौती के ही भूत से पूरी कराएगा। लोग आश्चर्य से रामू की बातें सुन रहे थे। भीड़ में फुसफुसाहट होने लगी। कुछ व्यक्ति कह रहे थे कि कल का छोकरा है, मुरारी, चला है साधु को चुनौती देने। भला यह क्या भूत वश में करेगा?

भीड़ ने देखा कि मुरारी ने भी उसी प्रकार से आँखें बंद करके कोई मंत्र बोला। फिर उसने झोले में से एक चुटकी राख लेकर पोखर में डाली। तुरंत ही आग की लपटें निकलने लगीं। लोगों ने पाया कि मुरारी ने भूत को अधिक खुश कर रखा है, क्योंकि मुरारी जो कुछ भूत से माँगता है, वह खुशी-खुशी उसे स्वीकार कर लेता और पोखर से आग की लपटें निकलने लगतीं।

सभी की नजरें मुरारी और उसके साथियों की ओर लगी थीं। इसी बीच सबकी नजरें बचाकर साधु चुपके से भीड़ से निकल लिया। थोड़ी दूर जाकर वह तेजी से भागने लगा, जिससे कि जल्दी से गाँव से दूर निकल सके। वह जानता था कि यदि पकड़ लिया गया तो उसकी खैर नहीं है।

सबसे पहले रामू की नजर साधु के स्थान पर गई। उसने देखा कि वहाँ साधु का अता–पता नहीं है। हाँ उसका कमंडल जरूर एक ओर लुढ़का पड़ा है। रामू जोर से अट्टहास करने लगा—"तो भाई तुम्हारा साधु तो मुरारी से डरकर भाग गया।"

अब सभी की दृष्टि उस ओर गई। उन्होंने पाया कि सचमुच वहाँ साधु का पता ही नहीं है। सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

रामू ने खड़े होकर सभी को समझाया कि पोखर में भूत का कोई चक्कर नहीं है। "तो फिर पानी से आग की लपटें कैसे निकलती हैं ?" एक बुजुर्ग ने पूछा।

मुरारी सभी समझाने लगा कि यह तो विज्ञान का एक करिश्मा है। उसने पुड़िया खोलकर दिखाई और कहा कि यह साधारण राख नहीं है। यह राख जैसी लगती जरूर है, पर वास्तव में यह सोडियम नाम की एक धातु है। यह पानी में गिरते ही जलने लगती है, इसलिए पोखर में इसके डालते ही ऐसा लगता है कि पानी में से आग की लपटें निकल रही हैं।

रामू ने साधु के कमंडल को टटोला। वहाँ दो पुड़िया रखी थीं। एक में सादा राख थी और एक में सोडियम मिली। जब साधु और चढ़ावा चढ़वाना चाहता था तो वह सादा राख पानी में डालता था। मनचाही भेंट मिलने पर वह सोडियम वाली राख पानी में डाल देता था। जब पानी में आग की लपटें निकलती थीं, तो व्यक्ति समझते थे कि भूत प्रसन्न हो गया है और हमारी मनोकामना पूरी हो गई है।

ये सारी बातें जानकर सभी को बहुत प्रसन्नता हुई। उस ढोंगी साधु को किसी ने अपनी सोने की अँगूठी चढ़ाई थी तो किसी ने अपनी सारी जमा पूँजी ही दे डाली थी। पर अब तो हो भी क्या सकता था? सभी ग्रामवासियों ने प्रतिज्ञा की कि अब वे कभी भी जादू-टोनों में विश्वास नहीं करेंगे, जिससे कि उन्हें कोई ठग और छल न सके।

गाँव का मुखिया भी वहाँ उपस्थित था। उसने मुरारी और उसके साथियों को इनाम देने की घोषणा की। वास्तव में उन सभी ने मिलकर गाँव को बहुत बड़ी ठगी से बचा लिया था। फिर मुखिया ने रामू और अन्य लड़कों को आस-पास के गाँवों में भी तुरंत भेज दिया। जिससे वे पहले वहाँ उस ढोंगी साधु के विषय में बता आएँ और वह उन्हें ठग न सके।



राजा की सनक

बहुत दिन पहले समस्तीपुर जिले में एक राजा राज्य करता था। उसका नाम सुंदरसिंह था। यों सुंदरसिंह के पास प्रजा की भलाई के लिए अनेकों काम थे। जैसे कि वह जगह-जगह धर्मशाला बनवा सकता था, तालाब खुदवा सकता था। रिश्वत, भ्रष्टाचार और बेईमानी को दूर करने के उपाय सोच सकता था, पर राजा व्यर्थ की, बिना उपयोग की बातें अधिक सोचता था। उदाहरण के लिए एक बार उसने अपने मंत्री को आज्ञा दी कि राज्य में जितनी भी मछलियाँ हैं, उन सभी को इकट्ठा करके एक बड़े तालाब में छोड़ दिया जाए। मंत्री बेचारा कह भी क्या सकता था? वह तो राजा का अनुचर ठहरा, पूरे एक महीने में बड़ी कठिनाई से यह कार्य पूरा हो पाया। मंत्री ने सेनापति से सारी बातें कहीं। सेनापति ने

राज्य के सारे मंत्रियों को बुलाया और गोष्ठी की। सभी ने एक मत से यही निर्णय किया कि राजा को एक बार अच्छी तरह सबक सिखाना चाहिए। इस तरह सभी का श्रम और शक्ति बरबाद होती है। इतना श्रम और समय प्रजा की भलाई में लगाया जाए तो उससे कुछ लाभ भी हो।

अभी इस घटना को दो ही महीने बीते थे कि राजा ने सेनापति को बुलाया और आज्ञा दी—"सेनापति! राज्यभर में जो तीन सबसे बड़े मूर्ख हों, उन्हें एक महीने में दरबार में लाकर उपस्थित करो, पर ध्यान रखना, उनसे बड़े मूर्ख कहीं ढूँढ़े भी न मिलें। नहीं तो तुम्हारा सिर सही सलामत नहीं रहेगा।"

"पर आप उन मूर्खों का करेंगे भी क्या महाराज! सेनापति ने मन ही मन कुढ़ते हुए पूछा।"

"अरे करेंगे क्या? उन तीन मूर्खराजों को 'मूर्ख शिरोमणि' की उपाधि देंगे और एक-एक जागीर देंगे।" राजा ने दंभ से मुँह फुलाते हुए कहा।

सेनापति मूर्खों की तलाश में चला तो गया, पर मन ही मन वह सोचता जा रहा था कि अबकी बार तो राजा को अच्छा ही सबक सिखाना है। उसकी बेवकूफी भरी बातें आखिर किस प्रकार से छूटें?

बीस-पच्चीस दिन बाद सेनापति घूमकर लौटा। वह सीधा राजसभा में जा पहुँचा। दरबार लगा हुआ था। सभी मंत्री अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे थे। सेनापति को देखते ही सुंदरसिंह ने पूछा—"कहिए! खोज पूरी हुई आपकी?"

"जी महाराज! सेनापति ने झुककर प्रणाम करते हुए कहा और अपने पीछे खड़े हुए आदमी की ओर इशारा किया।"

"ह-ह-ह! तो ये हैं, हमारे राज्य के सबसे बड़े मूर्ख।" राजा अट्टहास करते हुए कहने लगा। "सुनें तो क्या मूर्खता का काम किया है इन्होंने।"

सेनापति कहने लगा—"राजन! इस व्यक्ति का परिवार भूख से विलख रहा है। बच्चे रो रहे हैं, पत्नी हड्डियों का ढाँचा भर रह गई है, पर यह फिर भी कुछ काम नहीं करता। इससे किसी ने कह दिया था कि प्रसन्न होने पर संतोषी माता धन की वर्षा करती हैं। बस यह सारा काम छोड़कर एक वर्ष तक संतोषी माता को रिझाता रहा, पर काम न करने वालों की देवी-देवता भी कभी सहायता नहीं करते हैं? इसे धन न मिलना था और न मिला। इस बीच घर का सामान बिक गया, पेट तो आखिर भरना ही था न।"

एक महीने पहले इस मूर्ख ने किसी को कहते सुना था कि रुपया रुपये को खींचता है। बस फिर क्या था, उसने तुरंत एक साहूकार के यहाँ नौकरी कर ली। जब भी यह खाली होता, जेब से रुपया निकालकर तिजोरी के छेद पर लगाने लगता। इसे पूरा विश्वास है कि एक न एक दिन इसका रुपया तिजोरी के रुपयों को जरूर खींच लेगा। इसी चक्कर में इसके सौ रुपये हाथ से छूटकर तिजोरी में गिर चुके हैं।

सेनापति की बातें सुनकर सारे दरबारी हँसे बिना न रह सके। राजा ने तुरंत अपने गले का बहुमूल्य रत्नों का हार निकालकर उस मूर्खराज के गले में पहना दिया।

सभी को उत्सुकता होने लगी कि अब देखें कि दूसरा और तीसरा मूर्ख कौन है? तभी राजा ने आज्ञा दी—"अब दूसरे मूर्ख को प्रस्तुत किया जाए।"

कुछ झिझकते हुए सेनापति बोला—"महाराज! हमारे राज्य के दूसरे और तीसरे मूर्ख इस दरबार में ही मौजूद हैं।"

"हमारे दरबार में?" राजा ने आश्चर्य से प्रश्न किया। कौन हैं वे?

"महाराज! मैं उनका नाम नहीं ले सकता, नहीं तो वे मुझे मरवा देंगे।" सेनापति बोला—"अरे! मेरे रहते तुम प्राणों की चिंता मत करो। निर्भीक होकर कहो।" राजा ने आश्वासन देते हुए कहा।

"तो महाराज! बुरा न मानें, राज्य के दूसरे मूर्ख आप ही हैं।"

"क्या मतलब?" राजा ने गुस्से में भरकर पूछा।

"मतलब बिलकुल साफ है। जो राजा विद्वानों की खोज न कराकर मूर्खों की खोज कराए, विद्वानों को पुरस्कार न देकर मूर्खों को दे उससे और कहा भी क्या जाएगा?" सेनापति ने गंभीर होते हुए कहा।

"और तीसरा मूर्ख कौन है?" राजा ने उत्सुकता से पूछा।

"वह मैं ही हूँ। जो मूर्खों को ढूँढ़ने निकला। क्यों न मैंने यह काम करने से पहले नौकरी छोड़ दी। मूर्ख स्वामी की सेवा करने वाले कर्मचारी भी धीरे-धीरे मूर्ख बन जाते हैं।" सेनापति कह रहा था और सारे दरबारी सिर हिलाकर समर्थन कर रहे थे।

सेनापति की बातों से राजा की आँखें खुल गईं। उसने भरी सभा में प्रतिज्ञा की कि अब ऐसे व्यर्थ के कामों में अपनी शक्ति बरबाद नहीं करेगा। मंत्री-सेनापति सभी राजा के इस निर्णय से बड़े खुश हुए। इसके बाद राज्य के किसी कर्मचारी को फिर राजा की कोई सनक नहीं सहनी पड़ी।



सच्ची कमाई

सुंदर वन के सभी जानवर कालू कुत्ते से तंग आ गए थे। तंग होने का कारण उसका लालचीपन था। यों कालू कुत्ता सभी की भलाई किया करता था। उसमें परोपकार की भावना कूट-कूटकर भरी थी। वह दूसरे जानवरों की भाँति औरों की बुराई करने में अपना समय नहीं बिताया करता था। अपने इन गुणों के कारण वह सभी को प्यारा लगता था। पर कालू के चटोरपन के कारण जंगल के जानवरों को परेशानी थी।

कालू की गंदी आदत थी कि वह खाने-पीने की कोई बढ़िया चीज देखता तो उसके मुँह से लार टपकने लगती। उसका विवेक समाप्त हो जाता, वह भूल जाता कि वह मेरी चीज है या दूसरे की। इसे मुझे खाना चाहिए या नहीं। पराये माल को वह लपालप खा जाता था।

एक दिन की बात है कि डॉक्टर नीतू लोमड़ी मरीजों को देख रही थी। वह बड़ी थकी थी, आते ही उसने खाने की पोटली खोली। किसी रोगी जानवर ने ठीक होने पर डॉक्टर नीतू लोमड़ी को वह पोटली उपहार में दी थी। उसमें बड़े बढ़िया-बढ़िया पकवान थे। भीनी-भीनी गंद आ रही थी। लोमड़ी उन्हें खाने लगी कि न जाने कहाँ से कालू कुत्ता आ टपका। बिना नीतू से पूछे ही वह बहुत सारी मिठाई चट कर गया। नीतू लोमड़ी शिष्टाचारवश कुछ भी न कह पाई और उसे भूखा ही उठना पड़ा।

इसी प्रकार एक बार कुल्लू कौवा कहीं से खीर भरा पत्ता ले आया। वह घास पर बैठा चटकारे ले-लेकर उसे खा रहा था। तभी एकाएक कालू कुत्ता उसका पूरा का पूरा पत्ता लेकर तेजी से भाग गया। कुल्लू कौवा अपना सा मुँह लेकर रह गया।

कालू की इन शरारतों से तंग आकर जंगल के जानवरों ने एक सभा की। उसमें उन्होंने विचार किया कि जैसे भी हो कालू को सबक सिखाया जाए। जिससे वह इस प्रकार सभी को तंग करना भूल जाए। लंबू खरगोश जो बड़ा बुद्धिमान समझा जाता था, उसने कालू को सबक देने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली।

पाँच-छह दिन बाद की बात है। कलिया कोयल कुहुक कर जंगल के सभी पशु-पक्षियों के यहाँ निमंत्रण दे आई। उसने बताया कि कल लंबू खरगोश के बेटे का विवाह है। शाम को सभी उत्सव में जरूर सम्मिलित हों।

दूसरे दिन शाम को सभी जानवर नियत समय पर लंबू खरगोश के यहाँ पहुँच गए। लंबू ने उन सभी का बड़ा स्वागत किया। जब

सभी विदा होने लगे तो लंबू खरगोश बोला—"भाइयो और बहनो! इस शुभ अवसर पर मैं सभी को कुछ उपहार देना चाहता हूँ।" फिर लंबू खरगोश उपहारों के ढेर की ओर संकेत करके बोला—"कृपया मेरी यह तुच्छ भेंट स्वीकार करें। आपको जो भी अच्छा लगे वह उपहार ले लें।"

कालू बड़ी लालची निगाहों से उपहारों के ढेर की ओर देख रहा था। जैसे ही लंबू की बात समाप्त हुई तो वह तेजी से सबसे पहले आगे बढ़ा। उसने उपहारों के ढेर से अलग रखे हुए पैकेट को उठा लिया। सभी को कालू का व्यवहार बुरा लगा। लोमड़ी काकी ने तो कह भी दिया—"कालू! तुम्हें बड़े-बूढ़ों का भी कुछ तो लिहाज करना चाहिए। पहले उन्हें उपहार लेने के लिए कहना चाहिए था।"

सभी जानवर अपने मन पसंद पैकेट उठाकर अपने स्थान पर लौट आए। वे यह खोलकर देखने लगे कि लंबू खरगोश ने उन्हें क्या-क्या भेंट दी है? तभी सहसा सबका ध्यान कालू की भों-भों पर गया। सभी पक्षियों ने देखा कि कालू बहुत ही परेशान होकर तेजी से इधर-उधर दौड़ रहा है और चीख-पुकार कर रहा है।

असल में बात यह हुई कि कालू ने जैसे ही पैकेट खोला तो उसके अंदर ढेर सारी मधुमक्खियाँ भनभनाती हुई निकलीं और कालू पर चिपट पड़ीं। कालू उनसे बचाव करने के लिए कभी अपनी पूँछ हिलाता, कभी पंजों से उन्हें भगाता, तो कभी कान फड़फड़ाकर उन्हें मारने की कोशिश करता, पर मधुमक्खियाँ थीं कि भागने का नाम ही नहीं ले रही थीं। जगह-जगह काटकर उन्होंने कालू का बदन सुजा दिया था।

आखिर लंबू खरगोश ने मधुमक्खियों से विनती की—"बहनो! कालू ने गलती से आपको तंग किया है। कृपया अब इसे छोड़ दीजिए।"

मधुमक्खियों ने लंबू खरगोश की बात मान ली, वे उड़कर दूर जा बैठीं।

कालू कुछ देर तक तो दरद से कराहता रहा, फिर गुस्से में आकर बोला—"क्यों भाई लंबू! क्या इस अपमान के लिए ही मुझे यहाँ बुलाया था?"

लंबू कहने लगा—"देखो भैया! गलती तुम्हारी ही थी। मैंने तो उपहारों के ढेर में से कुछ लेने को कहा था। यह मधुमक्खियों का छत्ता तो मैं अपने बेटे और बहू के लिए शहद निकालने के लिए लाया था। यह तो ढेर से अलग पड़ा था। तुमने लालच में इसे क्यों उठाया? तुम्हारे लालच का ही तुम्हें फल मिला है।"

बूढ़ी लोमड़ी काकी भी कहने लगी—"कालू! तुम बहुत ही लालची होते जा रहे हो। तुम्हें जो खाना-पीना है, स्वयं कमाकर खाओ। दूसरों की चीज को देखकर कभी लालच न करो। ईमानदारी से अपने हाथ-पैरों से मेहनत करके जो चीज पा सको, उसी का उपयोग करो, इसी में सुख है, इसी में सफलता है और इसी में शांति है। जो दूसरों की चीज हड़पता है, वह अंत में दुःख ही पाता है।"

बूढ़ी काकी की बात कालू की समझ में आने लगी। उसने भरी सभा में प्रतिज्ञा की कि वह सदैव ईमानदारी और परिश्रम से कमाई चीज ही ग्रहण करेगा। दूसरों की चीजों को झपटने की कभी कोशिश नहीं करेगा।



मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा / ६४